ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५८
मूल्य एक रुपया

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

दो शब्द

बिना किसी प्रस्तावना या भूमिकाके इसे सीधे आपके हाथों सौंप रहा हूँ, विश्वास दिलाता हूँ—यदि आप इसे पढ़ेंगे तो अफ़सोस महसूस नहीं करेंगे।

साहित्य-कुटीर,
कालमुखी (खंडवा) } रामनारायण उपाध्याय

विषय-क्रम

व्यङ्ग्य-निबन्ध

रूपक



ग़रीब और अमीर पुस्तकें

उस दिन एक पुस्तक-विक्रेताने जब अपने यहाँ आये पुस्तकोंके बण्डल खोले, तब दैवयोगसे उनमेंसे एक ग़रीब और एक अमीर पुस्तक ज़रा नज़दीक हो आई थीं।

ग़रीब पुस्तक साधारण-से कपड़ेकी साधारण-सी साड़ी पहिने थी जिसपर साधारण ही किनारी लगी थी। जितनी साधारण उसकी वेश-भूषा थी, उतना ही साधारण उसका सम्पूर्ण जीवन। उसकी वेश-भूषासे उसके साधु स्वभाव, सरल जीवन, किन्तु आत्माकी गहराईका पता चलता था।

अमीर पुस्तकका ठाठ ही निराला था। वह पक्की जिल्दपर दुरंगा चेहरा लिये थी। उसकी कलात्मक रूप-रेखासे युक्त सुनहरी साड़ीपर रुपहला काम किया गया था और उसपरसे लहरदार किनारी मानो उसकी रंगीन-मिज़ाजीमें चार चाँद लगाये हुए थी। उसके अंग-प्रत्यंगसे उसकी फैशन-परस्ती और बनाव-सिंगारकी वृत्ति मानो झाँक-सी रही थी।

स्वभावतः जब ग़रीब पुस्तकने अमीर पुस्तकसे नमस्ते की तब प्रत्युत्तरमें उसने उसी तरह जवाब दिया जिस तरह आजका विशिष्ट वर्ग जन-साधारणसे बातचीत करनेमें कुछ गर्व और झिझक-सी अनुभव करता है। लेकिन ग़रीब पुस्तक उसे सहज ही छोड़नेवाली न थी। उसने बात-चीतका सिलसिला आगे बढाते हुए पूछा—'क्यों बहन, घर-परिवार सब अच्छा तो मिला है?'

सुनते ही अमीर पुस्तकका स्वाभिमान मानो जाग-सा उठा और उसने बड़े ही गर्वसे कहा—'घर-परिवारकी क्या बात है बहन, बड़ा ही

शानदार घर मिला है। खासा अच्छा बँगला है। सामने दरवाजेपर ही पतिके नामकी तख़्ती टंगी है। उसके बाद काफ़ी जगह छूटी हुई है और उसके साथ ही बँगलेके निर्माण-कालसे सम्बन्धित शिलान्यास (मुद्रक-प्रकाशक) का पृष्ठ अङ्कित है। उससे ज़रा आगे बढ़नेपर एक विशाल कक्ष मिलेगा। जानती हो उसमें क्या है? उसमें मेरे प्रियतमकी तस्वीर टँगी है।'

ग़रीब पुस्तकने देखा सामने ही आर्ट-पेपर पर, घुँघराले बालों वाले, आँखोंपर चश्मा चढ़ाये एक लेखककी बड़ी ही नज़ाकतसे खिंचवाई गई, तस्वीर थी।

अमीर पुस्तकने उसे झकझोरते हुए कहा—'अभी क्या हुआ है बहन, ज़रा आगे तो देखो—यह रहा हमारा प्रेमोपहारोंसे सम्बन्धित कक्ष' और उसने बिना किसी झिझकके उसे अपने 'आत्म-निवेदन' 'आत्म-विज्ञापन' और 'सर्वस्व-समर्पण' वाले कक्ष भी दिखा दिये। यूँ क़रीब १२–१५ पृष्ठके बाद, एक पृष्ठकी तीन-चौथाई जगह छोड़कर एक कोनेसे पाठ्य-सामग्रीकी शुरुआत हुई थी।

यह सब देखकर ग़रीब पुस्तकने बड़ी ही सरलतासे कहा—'बहन! हमारे घरकी कुछ न पूछो। सीमित साधनोंमें ही सारी व्यवस्था निभानी पड़ती है। न कहीं कोई खाली जगह है, न कोई रङ्गीन कक्ष। फ़ोटोकी तो यह हालत है कि मेरे पतिदेवकी इतनी उमर होनेको आई, आज तक उनकी एक भी फोटो उतर नहीं पाई है। न उनके पास प्रेमोपहार का आयोजन है, न आत्म-विज्ञापनके शब्द। जीवनके प्रथम पृष्ठपर पाँव रखते ही सिरपर जवाबदारी आ गई थी। अतएव प्रारम्भिक 'दो शब्द' और 'विषय-सूची' के एकाध कक्षको छोड़कर जैसे जीवनकी कहानी अपने आप उतरती चली गई है। फिर भी बहन, सन्तोष है कि घरके लिए हमारा जीवन भले ही सर्वस्व-समर्पित न हो, लेकिन हमारे लिए घर पर्याप्त सुविधाजनक बन पड़ा है।'

इसके बाद ग़रीब पुस्तकने अमीर पुस्तकके कारोबारके बारेमें पूछा। उसने उसी रौबमें उत्तर दिया—'मेरे पति एक ठाठदार रईस हैं, बहन! लिखना-पढ़ना उनके लिए जीवनकी एक बेकार साधना नहीं, वरन् अपने बेकार क्षणोंको काटनेका मनोरञ्जक साधन है। जब भी समय मिलता है, लिख लेते हैं। टाइपिस्ट आता है और टाइप कर देता है। प्रेषक है जो नाम और पता लिखकर डाकसे रवाना कर देता है। वह जहाँ भी पहुँचता है, लिफ़ाफ़ा देखकर ही बिना पढ़े स-सम्मान छप जाता है। काफ़ी बड़ा नाम है उनका हिन्दी-जगत् में। अब तो स्वयम् उन्होंने अपना एक बहुत बड़ा प्रकाशन-मण्डल भी खोल रखा है। उससे और कोई लाभ भले ही न हो, लेकिन देशके दो-चार गिने-चुने प्रतिष्ठित लेखकों की कृतिके साथ अपनी भी पुस्तक निकालने से उनका काफ़ी बड़ा रुतबा बन गया है। वैसे स्वयम् जब प्रकाशक नहीं थे, तब भी उन्हीं की बिरादरीके अनेकों प्रकाशक उनका नाम और रूप देखकर उनसे सम्बन्ध स्थापित करने को लालायित रहते थे। रही बिक्री की बात, सो बहन, पुस्तकके छपनेसे साल भर पूर्व ही प्रचार शुरू हो जाता है। बड़े-बड़े अख़बारोंमें रंग-बिरंगी स्याहीसे विज्ञापन दिये जाते हैं। प्रकाशनसे पूर्व ही प्रतियाँ भेजकर बड़े-बड़े समालोचकों को पहलेसे ही साध लिया जाता है। छोटी-मोटी जगहों की कौन बात बहन, बड़े-बड़े विद्यालयोंमें उनके स्वागत-सत्कार की तैयारी होने लगती है।' उसने फिर लजाते हुए कहा—'मेरे प्रियतम भी मुझे बहुत प्यार करते हैं। पुस्तकका ऐसा कोई पृष्ठ नहीं जिसमें उन्होंने मेरी चर्चा न की हो।'

इस पर ग़रीब पुस्तकने कहा—'बहन! यहाँ तो यह हालत है कि इतनी उमर होने को आई, आज तक वह कभी मेरा नाम तक ज़बान पर नहीं लाये। यही क्यों, उन्होंने अपनी कृतियोंमें भी मेरी नहीं, युगके प्रश्नों की चर्चा की है। लिखना उनके लिए ख़ाली दिल-बहलाव की वस्तु नहीं,

वरन् अपना रक्त देकर चलने वाली जीवन की साधना है। यदि मैं इन सबके चलते अपनी भी कुछ खोज-खबर लेने की याद दिलाती हूँ तो कहते हैं—'मुझमें और तुममें द्वैत कहाँ है ? तुम्हारे स्नेह को लेकर ही तो इतनी मुसीबतमें भी मेरी क़लम इतनी सरस और सहृदय होकर उतर सकी है।' सच कहती हूँ बहन, मैं उनके इस उत्तरमें अपना सब कुछ पा लेती हूँ, क्योंकि यह उनकी आत्माको गहराइयोंमेंसे आता है। मैंने पुस्तकें नहीं पढी हैं, जीवनको देखा है।

'रही प्रकाशनकी बात, सो बहन, जिस तरह ग़रीब की गुणवती बेटीको भी वर मुश्किलसे मिल पाता है, उसी तरह साधनहीन लेखक की प्रगतिशील कृतिके लिए भी प्रकाशक मुश्किलसे मिल पाते हैं। कारण, आज की दुनिया रूप पर जो मुग्ध है ! ऊपरी तड़क-भड़कसे दूर जो भी प्रकाशक मिल जाय, अधिकांश श्रमजीवी लेखकोंको उसीमें सन्तोष मानकर चलना होता है। पुस्तकका पहला संस्करण निकल जाय और जो उसके पात्र हैं उनके हाथों उसे पहुँचाया जा सके, यही क्या कम सन्तोष की बात है !'

इस बीच पुस्तक-विक्रेता की निगाह एक ओर पडी, गुफ्तगू करती, इन दोनों पुस्तको पर जा पहुँची। उसने उन्हें तुरन्त उठा लिया और धूल झाड़ अमीर पुस्तक को एक कांच की क़ीमती अलमारीमें और ग़रीब पुस्तक को एक साधारणसे रेकमें रख दिया।

सुनते हैं, उसके बाद एक दिन एक रईस आदमी आया और मन-चाही क़ीमत देकर अमीर पुस्तकको अपनी बगलमें दबा कर ले गया। आज भी वह उसके शयन-कक्ष की शोभा बढा रही है। और उसके कुछ दिन बाद ही एक साधारण-सी वेश-भूषा वाला साहित्य-साधक आया और अपने रक्त की गाढी कमाई देकर ग़रीब पुस्तक को अत्यन्त स्नेहसे सहेज कर अपने घर ले गया।



काम और योजना

उस दिन 'काम' जब काम पर जा रहा था, तो अचानक उसकी भेंट 'योजना'से हो गई।

योजनाने लजाकर उसका अभिवादन किया और बोली—'मैं कबसे आपकी प्रतीक्षा किये थी। लेकिन आप हैं कि रोज़ इस राहसे कतराकर निकल जाते हैं। आज मैं आपको यूं ही नहीं जाने दूँगी। कुछ चाय-वाय तो लेते जाइयेगा।'

कामने अपने काम पर जानेकी जल्दबाजी जताई, अपने कामोंकी तफ़सील गिनाई, लेकिन उसने एक न मानी। लाचार उसे, रुकना ही पड़ा।

उसके कक्षमें प्रवेश करते समय वह उसी तरह झिझका जैसे कोई किसी युवतीके एकांत कक्षमें प्रवेश करते समय चौंक उठता है। लेकिन उसकी रंगीनी पर वह एक क्षण मुग्ध रह गया। उसने देखा, स्वच्छ चादरोंसे ढकी टेबलोंकी शय्या पर, रंग-बिरंगी फाइलें अस्त-व्यस्त-सी पड़ी थीं। पखेकी हवासे, घूँघटकी तरह उसका मुख-पृष्ठ, रह-रहकर उघड़ जाता था और वह लजाकर पुनः उससे अपने आपको ढँक लेती थी। कभी-कभी वस्त्रोंकी तरह अपनी ही जगह पर फहराकर काग़ज़, उसके गौराङ्ग स्वरूपकी एक झलक दिखा जाते थे। लेकिन वह तेजी से उस ओरसे अपनी आँखें घुमा लेता था, कारण उनपर जगह-जगह 'निजी' और 'सर्वथा गुप्त' शब्द अंकित थे। वहाँकी दीवारें भी सुन्दर पोस्टरोंसे सजी थीं। किसीमें लहराती हुई फसलको, फहराते हुए वस्त्रों वाली कोई युवती दाँत्रसे अधिक, अपने नयनोंके कटाक्षसे काट रही थी, तो किसीमें उसके खण्डहर-प्राय ग्राम सड़कों और बिजलीके प्रकाशसे जगमगा

उठे थे। उसने एक क्षण आँखोंको मलकर यह विश्वास किया कि ये वास्तवके नहीं, वरन् पोस्टरोंकी खेती और पोस्टरोंके गाँव थे।

इसी बीच योजनाने उसके समक्ष चायका प्याला रखते हुए कहा—'यूं आप खोये-खोये-से क्यों लग रहे हैं। ज़रा इतमीनानसे बैठियेगा। यह भी आपका ही घर है।'

चौंककर कामने कहा—'लेकिन मुझे तो काम पर जाना है। आज आप माफ़ कीजियेगा, और किसी दिन फुरसतके समय आऊँगा।'

खिलखिलाकर हँसते हुए योजना बोली—'आप भी खूब हैं! काम काम और काम! आखिर, इस बिना-योजनाके कामसे भी क्या लाभ?'

कामने अपनेमें कुछ बल संजोते हुए कहा, 'योजनामें मेरा भी विश्वास है। लेकिन वह दिमाग़की चीज़ है। हाथोंके लिए तो काम चाहिए।'

उपहाससे मुसकराते हुए योजना बोली—'क्या आप भी अपढ किसानों-जैसी बात कर रहे हैं। आजकल तो बिना योजनाके कोई भी काम सम्पन्न नहीं होता। हर कामके लिए एक योजना चाहिए तभी उसकी सार्थकता है।'

कामने दृढतासे कहा—'तो क्या आप किसानके कामको अपढका काम समझती हैं। आज भी उसका काम जितना योजनाबद्ध है उतना और किसीका नहीं। वह आसमानके साथ ज़मीनका योग साधकर फसल उत्पन्न करता है। उसका काम बीज, बैल, हल, धरती और प्रकृतिके समन्वयकी साधना है। एक किसान जब खेतमें बीज बोता, या कारीगर फर्नीचर बनाता है, तो उसके दिमाग़में कोई योजना नहीं होती-ऐसी बात नहीं, लेकिन वह उसे अलगसे काग़ज़ पर नहीं उतारता, वरन् अपने दिमाग़में उसका नक़्शा लेकर काममें जुट जाता है और यूं खेतोंमें से फसल और लकड़ीमें से फर्नीचर निकलता चलता है।'

योजनाने कुछ सिटपिटाते-से कहा—'लेकिन इस तरहकी दिमाग़ी योजनाके कामोंको तो सरकार काम मानने वाली नहीं है। हमारे पास तो प्रत्येक कार्यके लिए एक सुनिश्चित योजना है। जैसे खेत बोनेकी योजना, घर बनानेकी योजना, ग्राम-विकासकी योजना, साहित्य-निर्माणकी योजना। क्या इन सबमें आपका विश्वास नहीं है।'

कामने हँसते हुए कहा—'लेकिन योजनाकी खेतीमें योजनाकी फसल और योजनोका साहित्य भी लगेगा। इसका ख़याल रखियेगा।'

योजनाने ज़रा चिढकर पूछा—'तो फिर आप क्या चाहते हैं?'

कामने गंभीर होकर कहा—'आजके युगकी सबसे बड़ी आवश्यकता योजना और कामके समन्वयकी है। कुछ लोग महज़ योजना बनायें और कुछ महज़ काम करें, यह सब टिकने वाला नहीं है। आज हर योजनाके हाथोंमें काम और कामके दिमाग़में योजना होनी चाहिए—तभी हम जनताके साथ क़दमसे क़दम मिलाकर आगे बढ सकेंगे।'

यों बातों ही बातोंमें उसने देखा, उसके कामका अधिकांश समय बीत चुका था। अतएव उसने दोनों हाथ उठाकर अपने दफ्तरकी देहलीज पर खड़ी योजनाको नमस्कार किया और खेतों, कारख़ानोंकी ओर अपने काम पर चल दिया।



ख़ाली लिफ़ाफ़ा और लिखा ख़त

यह युग ही सङ्गठनका जो ठहरा। सो उस दिन दुनिया भरके ख़ाली लिफ़ाफ़ोंने मिलकर एक सभा बुलाई। उसमें दूर-दूरके प्रतिनिधि इकट्ठे हुए—कोरे और छपे हुए, सादे और रङ्गीन, बुक-पोस्ट और रजिस्टर्ड, लेट-फ़ी-पेड और अरजेण्ट, सरकारी और निजी—जिसे जब, जहाँ सूचना मिली, सब सभा-स्थलकी ओर दौड़े आये।

फ़ौरन एक लेटर-बाक्सको मंचके रूपमें लेकर, एक लम्बे क़दके लिफ़ाफ़ेने हाथकी तरह अपने चिपकनेवाले रैपरको ऊँचा करके कहा—'दोस्तो, सहनेकी भी हद होती है, लोगोंके ख़तोंको एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचानेके बावजूद भी उनके द्वारा हमारा जैसा अपमान और उपेक्षाका भाव बरता जाता है, उसे अब हरगिज़ बरदाश्त नहीं किया जा सकता। यदि हम उनके ख़तोंका भार-वहन न करें, तो कोई उन्हें सेंतमें न पूछे। लेकिन वे हैं कि लिफ़ाफ़ा देखकर ही मज़मून भाप जाते हैं और उसमेंसे अपना ख़त निकालकर हमारे चिन्दे-चिन्दे करते, हमारी धज्जियाँ उड़ाते और हमें चूल्हेमें झोंक देते हैं।'

दूसरेने चिल्लाकर कहा—'मनुष्यमें इन्सानियत नहीं रह गई है। अपनी मदद करनेवालोंके साथ यह कैसा अन्याय है।'

तीसरा चिल्लाया—'हाँ जी, पहिले दुश्मनके राजदूतके साथ भी सज्जनताका व्यवहार किया जाता था। लेकिन ये हैं कि अपने ही प्रेम-पत्र लानेवालेके साथ भी अपमानजनक व्यवहार करते हैं।'

चौथेने जोशमें कहा—'दोस्तो, हमारे ही माध्यमसे इन्हें नौकरियाँ मिलतीं, अनेकोंके बीच गुप्त प्रणय-लीला चलती और झोपड़ेमें रहनेवाले की आवाज़ राज्य-प्रासादोंमें सुनी जाती है। यदि हम न होते, तो इनका

व्यापार ठप हो जाता, सरकारोंके बजट गड़बड़ा जाते, और अनेकों कुरूपोंको अनिन्द्य सुन्दरियोंसे शादी नहीं हो पाती लेकिन ये हैं कि 'उपकार' का बदला 'अपकार' से चुका रहे हैं।'

एक भारी-भरकम लिफ़ाफ़ेने आवाज़ कसी—'अकृतज्ञ कहीं के! हम उन्हींके नामोंका भार अपनी पीठपर वहन करते हैं, लेकिन वे अभी तक भी हमारा सम्मान करना नहीं सीखे।'

इसी बीच सभामें भारी हो-हल्ला मचा। किसीने पत्रोंको फाड़ फेंकने, किसीने उन्हें ग़ायब करने, किसीने उनकी भाषा बदल देने, और किसीने उनके मुखपर कालिख पोत देनेके सुझाव दिये।

लेकिन अन्तमें एकमतसे, आजके सबसे कारगर उपाय—'आम हड़ताल' करनेका निश्चय किया गया।

फ़ौरन गगनभेदी नारोंके साथ सभा भंग की गई और सब नज़दीकी लेटर-बाक्ससे, लौटती डाकसे, अपने-अपने घर लौट गये।

इधर ख़तोंने जब यह सुना तो उनमें खलबली मच गयी और उन्होंने भी तुरन्त एक विशेष सभा बुलाई। सुनते हैं, उनका अपना भी एक-खास अच्छा मजमा रहा। उनमें कुछ क्रान्तिकारी ख़त थे तो कुछ प्रणय-पत्र, कुछ आवेदनपत्र थे तो कुछ भाव-ताव की चिट्ठियाँ, कुछ सरकारी विज्ञप्तियाँ थीं तो कुछ सर्वथा निजी पत्र भी आ इकट्ठे हुए थे। सबमें एक अजीब जोश-खरोश नज़र आ रहा था। वे अभी यथा-स्थान बैठ भी न पाये थे, कि इसी बीच लक्ष-लक्ष जनता की तरह लहराते हुए अक्षरोंसे युक्त एक ख़तने उठकर कहा—'भाइयो, अभी अभी आपने ख़ाली-लिफ़ाफ़ों की कोरी हड़ताल की सनसनीदार ख़बर सुनी होगी। शायद इस तरह वे अपने ख़ालीपन को और भी बढ़ाना चाहते हैं, और इस प्रकार ज़माने पर अपना खोखलापन सिद्ध करना चाहते हैं। वे जो करना चाहें करें। लेकिन ज़रा सोचिए तो, अपनी बात औरों तक पहुँचानेके लिए जिन्हें हमने चुना, उनका सन्देशवाहकसे सर्वेसर्वा बनने की हरकत करना, कहाँ

तक न्यायसंगत है ? हमारे ही वज़नसे जो वज़नदार हैं, हमको लेकर ही जिनकी सुकोमल तरुणियोंके हाथोंसे लेकर राज्य-प्रासादों तक पहुँच है, उनका हमसे ही रूठना कब तक चलेगा ?

वे हम पर अकृतज्ञता का दोष लगाते हैं, लेकिन ज़रा उनकी कृतज्ञता भी तो देखिये। उन्होंने हमारे आवेदनपत्रों की जगह अपने आदमियों की नौकरियाँ लगाईं, हमारे टेण्डरों पर अपने आदमियोंको ठेका दिलाया, हमारी भावतावकी चिट्ठियों पर अपने व्यापारको पुष्ट किया, हमारी प्रेम-लीलाओंसे स्वयम् चुपके-चुपके रस लिया और हमारी आमदनीसे अपने बजटको समृद्ध बनाया।

कोई ज़रा इनसे पूछे कि ये, जो झोपड़ीकी बातको राज्य-प्रासादों तक पहुँचाने की बात करते हैं, सो हमारे ही टिकटोंके बल पर न ?

यदि इन पर हमारे टिकट की छाप न होती, तो कोई इन्हें मुफ़्तमें भी न पूछता और ये जहाँ भी पहुँचते, वहींसे उलटे मुँह की खाकर इन्हें बैरंग लौटना पडता। तब भी उन्हें या तो हमारी ही शरण लेनी पड़ती या ये मृतक-पत्र कार्यालयमें पड़े जीवन की अन्तिम सांसें गिनते नज़र आते।

सुनते ही सारा भवन तालियों की गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। इसी बीच एकने पूछा—'तो अब क्या हो ?' अनेक कण्ठोंसे स्वर गूंज उठा—'हड़ताल !'

दूसरे दिन ख़त और लिफ़ाफ़ों की हड़तालसे सारे नगरमें सन्नाटा छा गया। बड़े बड़े दफ्तरोंमें ताले पड़ गये। व्यापार ठप हो गया। सरकारी आमदनी डगमगाने लगी। धरती परसे गुप्त प्रणय-लीला उठ चली और दैनिक अख़बार न पानेसे लोग अन्धकारमें तैरने-उतरने लगे। अख़बारोंके अभावमें, हाथ को हाथ न सूझता था। लोग सुबह की डाक की प्रतीक्षामें अपनी-अपनी मेज़ों पर ही बैठे रह गये।

तब सब शोषित-पीड़ितोंने मिलकर, जिनमें प्रेमी, व्यापारी, कार्यकर्ता और कर्मचारी नाना क़िस्मके लोग थे, एक मिली-जुली सभा बुलाई और दोनों ओरसे बीच-बचाव करते हुए आम रायसे यह निश्चय किया कि—

आजसे न कोई ख़त होगा, न कोई लिफ़ाफ़ा, वरन् लिफ़ाफ़े पर ही ख़त लिख कर ख़त को इस क़दर मोड़ा जाए कि वह लिफ़ाफ़ा नज़र आये। इस तरह दोनोंके स्वत्वोंकी रक्षा की जाएगी।

सुनते ही चारों ओर हर्ष की लहर छा गई, और इस प्रकार—'अन्तर्देशीय लिफ़ाफ़े' का जन्म हुआ!

जब वे मिलीं

एक दिन अचानक ट्रेनमें उनकी मुलाकात हो गई। देखनेमें वे दोनों समकक्ष-सी लगती थीं, लेकिन स्वभावसे एक जितनी चंचल थी, दूसरी उतनी ही शान्त। एक जितनी नाज़ुक, कमसिन और फैशन-परस्त थी, दूसरी उतनी ही सरल, साधारण और सादगी-प्रिय। एक देखती कहीं, आँखें किसीसे मिलाती और बात किसीसे करती थी। जब कि दूसरी शांत, गम्भीर, आत्मस्थ, स्वयम् अपने आपमें लीन-सी प्रतीत होती थी।

वेश-भूषा भी दोनों की, दोनोंके अनुकूल थी। एक विभिन्न प्रान्तों की तरह रंग-बिरंगी साड़ी पर एक-राष्ट्रीयता की मगजी लगाये थी, जब कि दूसरी सार्व-देशिकता की तरह बिना किनारे की एक-रँगी साड़ी पहिने थी।

जैसे ही गाड़ी चली, पहिलीने अपने हाथके अख़बारसे हवा लेते हुए कहा—'बडी परेशानी है! इस गरमीमें भी लोग बुलानेसे बाज़ नहीं आते!'

दूसरीने सहज पूछा—'कहाँ जाइयेगा आप?'

कुछ गर्व-भरी मुद्रामें उसने कहा—'यही बनारस तक। वहाँ ग्राम-सेवा-शिविर का उद्‌घाटन है मेरे हाथों।' और वह गुनगुनाई—'कभी शिलान्यास तो कभी उद्‌घाटन-समारोह लगे ही रहते हैं।'

एक मीठी चुटकी लेते-से पूछा—'और विसर्जन-समारोह?'

वे सहज कह गयीं—'हाँ, अभी पिछले वर्ष गणेशोत्सवका विसर्जन मेरे ही हाथों सम्पन्न हुआ था। किसने बताया आपको?'

कहा—'यही अख़बारोंमें पढ़ लिया था।' और आँखों ही-आँखोंमें मुसकराते-से पूछा—'आखिर आप घर और बाहरके इन सब कार्यों का समन्वय कैसे साध लेती हैं ?'

ज़रा गम्भीर होते-से उसने कहा—'अपना तो जीवन ही सार्वजनिक है बहन ! वैसे हम तीन बहिनें हैं। सबसे बड़ी जो पढ़नेमें तेज थी वह एम० ए० करके लैक्चरार हो गयी। दूसरी जो व्यवहार-कुशल थी वह मैट्रिक करके घर-गिरस्ती संभाले है। और अपनने तो बहन ! बजाय पढनेके शुरूसे ही सेवा-कार्य अपना लिया है। और, इसके चलते यह हालत है कि सभा, स्वागत और भाषणोंसे फुरसत ही नहीं मिलती। कभी एक ही दिनमें अनेकों सभाओं को प्रेसाइड करना होता है। तो कभी, एक ही सभा-मण्डपमें अनेकों पर-पुरुषोंके साथ बड़ी रात तक बैठना होता है। कभी स्वागतके नाम पर अनचाहे व्यक्तियोंके हाथों माला पहिननी होती है, तो कभी फोटोके नाम पर जाने किन्हें, जाने कैसे-कैसे पोज देने होते हैं। कभी दिनमें खुली सभा, तो कभी रातमें गुप्त बैठक ! कभी पत्रोंमें खुला वक्तव्य, तो कभी कूटनीतिज्ञोंसे गुप्त वार्ता। कभी पत्र-प्रतिनिधियोंसे घर पर मुलाकात, तो कभी यात्रा पर जांच-कमीशनके साथ ! ये सब तो जीवनके अभिन्न अंग बन चुके हैं बहन !'

पूछा—'तुम्हारे इन सब कार्योंसे उन्हें कोई एतराज नहीं होता'

वे बोलीं—'इसमें एतराज की कौन बात ? फिर, मैं हरबार उनके प्रति ईमानदारी की शपथ जो ले लेती हूँ !' और वह कहती ही गयी—'तुम तो जानती ही हो बहन ! इस सार्वजनिक जीवनके चलते, खासकर चुनावोंके दिनो, जाने कहाँ, जाने कितनोंके सम्पर्कमें आना होता है। तब ऐसा हो-हल्ला मचता है कि कौन सच है और कौन ग़लत इसका कुछ पता हो नही चलता। अच्छे-अच्छोंके मन फिसल जाते हैं, और वे अपनी को छोड़, दूसरी पार्टियों को गले लगाना चाहते है। ऐसेमें यदि ज़रा भी फिसले, तो गये। नहीं तो, हर जीतके बाद उनके प्रति

ईमानदारी की शपथ लेकर सब कुछ ठीक-ठीक कर लिया जाता है। फिर किसकी मजाल जो उँगली उठावे?'

लेकिन किसी की उँगली उठनेसे पूर्व ही प्लेटफार्म आ गया और पत्रकार की उठी हुई उँगलीसे मालूम हुआ कि उनमेंसे पहिली का नाम राजनीति था, और दूसरी का साहित्य !!

यदि दैनिक अख़बार नहीं होते

उस दिन सुबह की डाकमें जब दैनिक अख़बार नहीं आया तो सब कुछ पाकर भी मन कुछ अजीब ख़ाली-ख़ाली-सा लगने लगा। और तब पहिली बार मुझे ख़याल आया कि यदि इस दुनियामें दैनिक अख़बार नहीं होते, तो कितनी मुश्किलें होतीं।

फिर कौन तो हमें महज़ एक आनेमें चाय की चुस्कियोंके साथ नाश्ते की तरह पर्याप्त मानसिक खाद्य देता, और कौन साप्ताहिकों का व्रतभंग होने एवम् मासिकों का धर्म बिगड़ने पर, हमारा नियमित मानसिक संतुलन क़ायम रखता!

फिर किसे तो हम बड़े रोबसे अपनी बगलमें लेकर रेल-मोटर या ट्रामके दरवाज़ोंमें चढते, और कौन यात्राके समय हमारा मन बहलाकर हवा झलकर और नाश्तेके समय अपना हृदय बिछा कर, हमारी सेवा करता?

यही क्यों, यदि दैनिक अख़बार नहीं होते, तो हमारी आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति भी डगमगा जाती। हमारे जीवनमें कोई रस नहीं रह जाता, आनन्द नहीं रह जाता। फिर क्या तो पढ़ कर हम आफिस जाते, और किसके सहारे वहाँ सारे दिन अपना रोब जमाते!

सोचिये, राजनैतिक दृष्टिसे, यदि दैनिक अख़बार नहीं होते तो विश्वमित्रके आधार पर विश्व की स्थिति पर बोलने वालों का क्या होता?

यदि दैनिक अख़बार नहीं होते तो, एक छोटी-सी जगहमें सौ की जगह हज़ार आदमी कैसे समाते?

यदि दैनिक अख़बार नहीं होते तो, एक अपढ मेम्बर का ऊल-जलूल ढंगसे पढा भाषण, अख़बारोंके माध्यमसे विद्वानों को मात कैसे करता ?

अजो, यदि ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो, श्रमदानके समय मंत्री बजाय कुदाली की तरफ देखनेके—कैमरामैन की ओर कैसे देखते ?

सामाजिक दृष्टिसे, यदि दैनिक अख़बार नहीं होते तो, किसी अनिंद्य सुन्दरी का विज्ञापन देख कर किसी बदशकलसे विवाह नहीं होता ।

यदि ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो, आदमी मिस्री युद्धसे बार-रूममें परेशान नज़र नहीं आता ।

और यदि ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो, आदमी एक ही पृष्ठ पर कहीं आग लगने और कहीं बाढ आनेके समाचार पढ़ कर, अपना जीवन-वीमा नहीं कराता ।

आर्थिक और नैतिक दृष्टिसे, यदि ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो एक रुपयेमें एक-सौ-सत्रह चीज़ें नही बिकतीं ।

यदि ये दैनिक अख़बार नही होते तो, आदमी को स्वास्थ्य और सफाईके नाम पर लक्स-टायलेट और संयम-नियमके नाम पर कामशास्त्र का विज्ञापन नहीं पढना पडता ।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिसे, यदि ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो, युद्धके दिनों दोनों पक्षों की समान हानि होने पर भी अपने सैनिक कम और दुश्मनके अधिक हताहत नहीं होते ।

यही क्यों, यदि दैनिक अख़बार नहीं होते तो, प्रकृति की स्थिति भी गड़बडा जाती । तब वर्षा तो होती, लेकिन अख़बारी ख़बरके अभावमें लोग पानी गिरने की बात पर विश्वास नहीं करते । तब खेती तो होती, लेकिन रिपोर्टों और आँकड़ोंके अभावमें लोगों को अपनी फ़सल का अन्दाज़ नहीं लग पाता ।

सच कहता हूँ, यदि दुनियामें ये दैनिक अख़बार नहीं होते तो सारी दुनिया का कारोबार ठप होता। हाथ को हाथ नहीं सूझता, और तब आदमी की बातमें और सुबहकी चायमें कोई रस नहीं रह जाता। और ऐसे संकटके समयमें भी यदि दैनिक अख़बार नहीं होते, तो कौन राजा हरिश्चन्द्र की तरह स्वंय रद्दीके भावों बिककर हमारी मदद करता?



ताशके बादशाह

बादशाह आदमीके जीवनसे खेलते आये हैं, लेकिन आदमी है कि वह बादशाहोंसे ताशके पत्तोंकी तरह अपना मनोरंजन करता आया है।

बादशाह अपनी मरज़ी पर दुनियाको चलाते हैं, लेकिन आदमी अपनी अंगुलियों पर बादशाहोंको नचाता आया है।

वैसे बादशाहोंके दो ही रंग होते हैं—'लाल और काले।' लेकिन ताशकी दुनियामें वे शकलके आधार पर चार भागोंमें विभाजित रहे हैं—'लाल-लाल अलग, काले-काले अलग।' लेकिन इस रंग-भेदसे उनके स्वभावमें कोई अन्तर नहीं आता। बादशाह चाहे लालका हो चाहे कालेका, सब एक जात होते हैं।

वैसे हर बादशाहकी अपनी एक बेगम होती है, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर वे 'वर्णभेद' को भी नहीं मानते। और लालका बादशाह कालेकी बेगमको, तथा कालेका बादशाह लालकी बेगमको ले जा सकता है।

चूँकि बादशाह 'प्रजातन्त्रवादी' नहीं होते, इसलिए सब समान शक्तिशाली होने पर भी, बारी-बारीसे किसी एकके समक्ष सिर झुकाते आये हैं। वे 'काट' को मानते हैं और वह जिस रंगकी भी चल जाये, उसे सर्वोच्च सत्ताके रूपमें स्वीकार करते हैं। यही वजह है कि जिससे कभी-कभी, काटके रंगवाली दुग्गी भी बिना काटके बादशाहको मात दे जाती है।

चूँकि ताशकी दुनियामें बेगम और बादशाह होते हैं, इसीलिए ग़ुलाम भी होते हैं। और ग़ुलामों पर सबका समान अधिकार होता है।

यहाँ तक कि ताशके बादशाह ही नहीं, ताशकी बेगमें भी उनपर रोब ग़ालिब करती नज़र आती हैं।

यद्यपि बादशाहोंकी दुनियामें ग़ुलामोंका कोई मूल्य नहीं होता फिर भी वे 'बादशाह' के 'ग़ुलाम' होनेसे पंजी-दस्सी तकको डरा ही लेते हैं!

लेकिन आख़िर यह 'एक्का' क्या है? जो न पंजी-दस्सीसे डरता है, और न ग़ुलाम बादशाहसे! और सबको समान रूपसे जीतता चलता है।

यह 'एक्का' एक अकेले आदमीकी प्रतिनिधि आवाज़ है।

यह अपने आप में एक स्वयम् पूर्ण इकाई है!!

यह बँधी हुई मुट्ठीकी तरह अपनी जगह पर मज़बूत है। इसीलिए अपने जगत्का स्वामी है।

ताशकी दुनियामें बादशाह तभी तक बादशाह है जब तक पंजी-दस्सीमें एक्का नहीं। एक्केके आते ही अच्छे-अच्छे बादशाहोंको मुँहकी खाते और हारे हुए पत्तोंके साथ दिन बिताते देखा है।

जी हाँ, यह ताशकी दुनिया है और ये हैं 'ताशके बादशाह'!

मेम्बर-महिमा

एक दिन, पराये अनुग्रहकी इच्छा करके, नारद-स्वरूप पत्रकार विष्णुलोकको गये और वहाँ अत्यन्त श्रद्धासे हाथ मिलाय कहते भये कि 'हे भगवन् ! इस समय मृत्युलोकमें नाना जन, नाना क्लेशोंसे संयुक्त हो, नाना योनियोंमें जन्म लेय, नाना प्रकारकी असुविधाओंसे व्याप्त हैं, सो उनका दुःख किस प्रकारसे दूर होय, ऐसा कोई उपाय बतलाइयेगा।'

भगवान् बोले, 'हे परोपकारी पत्रकार, तुमने लोगोंके अनुग्रहकी इच्छा करके अच्छी बात पूछी है। अब मैं उसका उपाय बतलाता हूँ सो सुनो। कलिकालमें मनुष्य, 'मेम्बर-भगवान्' की उपासना कर समस्त विघ्न-बाधाओंसे मुक्त हो जाता है।'

पत्रकार पूछते भये कि 'हे प्रभु, उनका कैसा स्वरूप कहाँ निवास और क्या महत्त्व है? यह सब विस्तारपूर्वक कहिये। हमारे सुननेकी श्रद्धा उत्पन्न हो रही है।'

भगवान् बोले, 'हे पत्रकार, वे श्वेत वस्त्र; श्वेताम्बर, और श्वेत मुकुट धारण किये हुए हैं। उनका श्वेत कोठीमें श्वेत मंच पर, या श्वेत जनोंके बीच सर्वत्र वास होगा। उनके मुखारविन्दसे निकलनेवाली वाणी भी श्वेत झूठकी तरह श्वेत होगी। उनके एक हाथमें पद्मकी जगह 'फाइल' और दूसरेमें सुदर्शन-चक्रकी जगह 'पार्कर पेन' शोभायमान होगा। जब वे बोलेंगे तो उनकी वाणीसे अमृतकी तरह वचन-आश्वासन और योजनाएँ प्रवाहित होती चलेंगी। वैसे वे साक्षात् ब्रह्मकी तरह कहीं न होकर भी सब जगह, और कुछ न होकर भी सब कुछ होंगे तथा बड़े-बड़े नेता, अधिकारी और विद्वान् आसन छोड़ खड़े होय, सम्मान-सहित, उन्हें अपनी बगलमें स्थान देंगे।

'जब, जो, जहाँ और जिस समय भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका स्मरण करेंगे, वे तत्काल वहाँ प्रकट होय, उनका दुःख निवारण करेंगे।'

इस पर पत्रकार पूछते भये कि 'हे भगवन्! उनके पूजनका क्या विधि-विधान है? यह सब जाननेकी हमारी जिज्ञासा हो रही है।'

भगवान् बोले 'हे बन्धु! जो भी भक्त अपने गाँवके चौराहे पर झंडी-पताका लगाय, मंच बनाय, उसे श्वेत वस्त्रसे ढँकते हुए, अपने परिवार ही नहीं, आसपासके ग्रामीण जनको एकत्रित कर उनके भाषणका आयोजन करेगा, वे सब काम छोड़ वहाँ उपस्थित होंगे। उनके आते ही, भक्त, स्वागत-गानसे उनका आवाहन कर और ध्वनि-विस्तारक-यन्त्रसे उनका स्तुतिगान कर, मानपत्र और मालासे उनका यथाविधि सत्कार करे। इतना करते ही वह प्रसन्न होय, खड़े होकर जनताको दर्शन देंगे, और एक हाथसे उन्हें शान्त रहने और दूसरेसे उन्हें अभय-दान दे, अपनी अमृत-वाणी सुननेका निवेदन करेंगे। उसके बाद कुछ भक्तगण उनका फोटू लेंगे। और वे सारे भेद-भाव भूल कर, गद्‌गद् होय, आसन जमाय सबके साथ भोजन ग्रहण करेंगे।

'भाषण और भोजनके बाद, सायंकाल यदि कुछ नृत्य-गान और भजनका भी आयोजन रहे, तो इससे वे विशेष आनन्दित होंगे।'

अन्तमें पत्रकार पूछते भये कि 'हे भगवन्, इनके पूजनका क्या महत्त्व और क्या फल मिलेगा, यह सब भी हमारे अर्थ निवेदन कीजिये।'

भगवान् बोले, 'हे बन्धु! इनकी महिमा किसने जानी है? अर्थात् किसीने नहीं। इनके चरणारविन्दमें कुछ ऐसा प्रताप होगा कि इनके पहुँचते ही किसी भी बन्द दफ्तरके दरवाजे, प्रेयसीकी तरह अपनी दोनों भुजाएँ फैलाकर उनका स्वागत करेंगे। क्लोज-अकाउंट भी उनके समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देंगे। और समाप्त-प्रायः स्टाक-रजिस्टरोंसे भी उनके खातिर नियन्त्रित वस्तुओंकी अनियंत्रित वर्षा होने लगेगी।

उनकी इच्छामात्रसे किसी भी योग्यसे योग्य पदाधिकारीको अपने स्थानसे स्थानांतरित कर तत्काल उनकी जगह किसी दूसरेकी नियुक्ति की जा सकेगी। इनकी कृपाकी कोरमात्रसे महान् कृपण भी, डील-डौल-डालिंग और डीलरीसे सम्पन्न होय. सुख भोगेगा। और इनके तनिकसे कोपसे मनुष्य लगी हुई नौकरीसे छूट आनरेरी पदोंसे हटाय महान् कष्टको प्राप्त होगा।

'सो हे पत्रकार, तेरे अत्यन्त स्नेहके कारण हमने यह महान् पवित्र और गुह्य व्रत तेरे अर्थ निवेदन किया। कलिकालमें जो भी मनुष्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इन्हें भजेगा, वह यदि अयोग्य होय तो योग्यता पाय, दरिद्र होय तो डीलरी पाय, धन-धान्यसे सम्पन्न होय, और अज्ञान होय तो समस्त ज्ञानवालोंके ऊपर राजपद पाय, इस लोकमें सुख भोग दूसरे लोकमें भी वैसा ही महान् पद प्राप्त करेगा।'



क्या दम रखा है !

आपमें दम है या नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन मैं एक दमदार आदमी हूँ। मेरा दम मुझे सोचनेमें मदद देता है लिखने-पढ़नेमें मदद देता है और जो काम मेरे बूतेके नहीं है उन्हें करनेसे रोकनेमें मदद देता है।

अत्यधिक कामसे किसी का 'दम' 'भर' आता है, तो किसीका 'दम' 'फूलने' लगता है और कोई थककर दमभरको 'दम लेने' के लिए बैठ जाता है। लेकिन मेरा दम अजीब किस्मका है। वह जब चलता है तो महीनों चलता रहता है।

कहते हैं पुराने ज़मानेमें छः माहकी रात और छः माहका दिन हुआ करता था। पता नहीं, यह कहाँ तक सच है। लेकिन यह बात तो सोलहों आने सच है कि मेरा दम छः माह चलता है और छः माह बैठा रहता है। जब वह बैठता है तो चलनेका नाम नहीं लेता। और जब वह चलता है तो रुकनेकी उसे ज़रूरत नहीं पड़ती।

आप कहेंगे 'क्या दम रखा है इन बातों में?' मैं पूछता हूँ, कि आख़िर वह कौन-सी बात है जो बिना दम के हो? पहलवानमें दम हो तो वह बाज़ी जीत जाये, नेतामें दम हो तो वह चुनाव जीत जाये, और साहित्यिकमें दम हो तो उसकी रद्दी-सी किताब भी कोर्स बुक हो जाये। और फिर यह दुनिया ही कुछ ऐसी है कि किसीको साहूकार दम नहीं लेने देता, तो किसीका श्रीमतीजीके तकाजोंके मारे नाकों दम रहता है।

अगर आदमीके पास पैसा नहीं हो तो चलेगा। ताकत नहीं हो तो चलेगा। अरे, एक बार अकल नहीं हो तो भी चलेगा। लेकिन बिना दम के तो आदमी एक क्षण भी टिक नहीं पायेगा। उखड़ जायेगा। यह

सारी दुनिया तो 'दम-खम' पर टिकी है न। आदमी 'दम' पर, और मकान 'खम' (खम्भ) पर ! इस दम-खमको लेकर ही सारी दुनिया-दारी है। अरे ! जिसमें 'दम' नहीं, वह भी क्या कोई आदमी है ? सच कहता हूँ कि विना दमके आदमी 'दुम' दबाकर भाग खड़ा होता है, और उसकी बातका भी कोई 'दाम' नहीं होता।

आप ही देखिये न, इस देशमें जितने भी बड़े आदमी हुए हैं वे सब दमदार रहे हैं।

बाबू राजेन्द्रप्रसादमें दम है, इसीसे वे इस देशके राष्ट्रपति हैं। आचार्य नरेन्द्रदेवमें दम था, इसीसे वे 'प्रजा-समाजवादी-पार्टीके अध्यक्ष' थे मश्रुवालाजीमें दम था, इसीसे वे इस देशकी सर्वोच्च संस्था गाँधी-सेवा संघके अध्यक्ष रहे, व्यक्ति ही क्यों, चाहे कांग्रेस हो समाजवादी दल हो, या सर्वोदय समाज हो, वे सब भी आज इसीलिए टिके हैं कि उनमें 'दमदार' आदमी हैं। और जिनमें दमदार आदमी नहीं उनका इस देशमें कोई अस्तित्व ही नहीं !

इसीसे कहता हूँ कि यदि इस देशकी सारी समस्याओंका हल होना है, तो यहाँके सारे 'दमदार व्यक्तियों' को एकमत से, एक झंडेके नीचे एक साथ काम करना चाहिये उससे एक अहिंसक समाजको नव रचनाका बल मिलेगा और विश्व-शान्तिका मार्ग भी प्रशस्त बनेगा। कारण, 'दमदार' आदमियोंमें हिंसा करनेका कोई 'दम' नहीं होता, वे स्वभावतः अहिंसक होते हैं !!



आदमी और समाचारपत्र !

प्राचीन कालमें आदमीकी चार जातियाँ थीं, लेकिन बदलते हुए समयके साथ वह चार नयी श्रेणियोंमें विभक्त हो चुकी हैं—साधारण आदमी, विशिष्ट वर्ग, राजनीतिज्ञ और साहित्यिक। आदमीके पास अपने विचार व्यक्त करनेके भी आज चार ही साधन रहे हैं—दैनिक पत्र, साप्ताहिक, मासिक और पुस्तकें। आइये, हम इनके माध्यमसे आदमीको समझनेका प्रयत्न करें।

साधारण आदमी—एक दैनिक पत्रकी तरह ही साधारण आदमीका जीवन होता है। ये दोनों रोज़ एक नया जीवन, नया उत्साह, नये समाचार और नई बातें लेकर जीवनमें उतरते हैं। सुबह चायके प्यालेके साथ, नया अख़बार और नया जीवन विशेष आनन्ददायक मालूम होता है। ज्यों-ज्यों धूप चढ़ती जाती है आदमी काममें उतरता जाता है, समाचार फीके पड़ते जाते हैं, अख़बार पुराना होता जाता है, कामकी सरगर्मी बढ़ती जाती है, मन और शरीर थकता जाता है, और साँझ पड़े दैनिक अख़बार और साधारण आदमीका जीवन दोनों ऊबकर बैठ जाते हैं, पुराने पड़ जाते हैं।

लेकिन उसके बावज़ूद भी उनमें नित्य नया जीवन आता है,—नित्य नई उमंगें होती हैं और वे रोज़ नये सूरजके साथ नये दिनका स्वागत करते हुए नये काममें जुट जाते हैं। नदीके प्रवाहकी तरह उनके जीवनका कभी अन्त नहीं होता। बल्कि सच तो यह है कि यही वह पृष्ठभूमि है जिसको लेकर साप्ताहिक और मासिकके विचार सँवरते और राजनीतिज्ञ तथा साहित्यिकका जीवन—निखरता आया है।

विशिष्ट वर्ग—एक साप्ताहिक पत्रकी तरह ही ये अपने जीवनमें कुछ विचार, कुछ टिप्पणियाँ, कुछ सम्पादकीय, कुछ आलोचनाएँ देश-विदेशके समाचारों पर एक उड़ती नज़र और बादमें कुछ नोटिस, कुछ विज्ञापन और कुछ आत्म-विज्ञापन लिये होते हैं।

बात करनेमें ये पहिले कुछ विचार, कुछ टिप्पणियाँ और कुछ आलोचनाएँ रखते हैं, लेकिन बादमें ये नोटिस, विज्ञापन और—आत्म-विज्ञापनकी भाषा पर उतरे बिना नहीं रहते।

एक साप्ताहिकके मुखपृष्ठकी तरह ही ये प्रथम मुलाकातमें जितने प्रभावशाली होते हैं, बिदा होते समय उतने ही प्रभावहीन। वज़नमें ये जितने भारी होते हैं, जीवनमें उतने ही हलके। इनका ऊपरी स्वरूप जितना भड़कीला होता है, अन्दरका उतना ही–खोखला। इनमें न तो कहीं नयापन होता है और न स्थिरता। एक साधारण आदमीकी तरह इनका जीवन सतत गतिशील भी नहीं होता? ये तो साप्ताहिक की तरह समाजके जीवनमें लगी गठानें है। इसीसे मानवकी सतत जीवन-यात्रामें, उसके विकास या निर्माणमें इसका कोई हाथ नहीं होता। ये तो आते हैं, और अपने आस-पासके—वातावरण पर तनिक रोब जमा समाप्त हो जाते हैं। अपने आगे या पीछे, इनका कोई अस्तित्व शेष नहीं रह जाता।

राजनीतिज्ञ—एक मासिककी तरह, आचरणसे दूर, कुछ विचार लेकर ही ये सामने आते हैं और समाचारपत्र तथा साधारण आदमीके कन्धे पर चढ़कर ही इनका जीवन फलता और फूलता आया है। इनके आचार और विचारमें कोई समन्वय नहीं होता इसीसे ये अपने पृष्ठोंकी तरह जीवनमें, ब्रह्मचर्य लेखके साथ कामशास्त्रकी पुस्तकोंके विज्ञापन और सचाईके महत्त्वके साथ 'एक रुपयेमें ढाई सौ चीजें' जैसे झूठको स्थान दिये होते हैं। लोगोंकी—आवश्यकताओं, कठिनाइयों और कमियोंमें से ही इनका जन्म होता है और उनके श्रमसे ही ये अपने

सपने साकार करते आये हैं। चूँकि इनकी जड़ें ज़मीनमें गहराईसे पैठी नहीं होतीं, इसीसे बड़ी-बड़ी बातें करनेके बावजूद भी सुदूर भविष्यको प्रभावित करनेकी इनमें क्षमता नहीं होती। ये समयके साथ जीते और अपने समय पर तनिक असर डाल, उसीके साथ समाप्त भी हो जाते हैं। एक मासिक पत्रकी वार्षिक जिल्दोंकी तरह ये, आदमीके मनकी बजाय, इतिहासके पृष्ठोंमें अधिक ज़िन्दा रहते हैं।

साहित्यिक—एक पुस्तककी तरह ही देश, काल और समय से परे होता है इनका जीवन। आचरणकी साधनामें से ही इनके विचारोंका जन्म होता है और विचारोंको जीवनमें उतार कर ही इनके पात्र ज़िन्दा होते हैं। ये वर्तमानमें भविष्यका दर्शन करते और भविष्यके सपनेको वर्तमानमें खींचकर, एक सही जीवनके निर्माणमें अपना योग-दान देते हैं। ये भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर अपना समान असर रखते हैं और साधारण आदमी, विशिष्ट वर्ग एवं राजनीतिज्ञ—सबका सञ्चालन किये रहते हैं। पुस्तकोंकी तरह ये कभी पुराने नहीं पड़ते और लोक-जीवनसे तदाकार हो जन-जनकी ज़बान पर तैरते हुए उनके मन पर अपना अमिट असर छोड़ जाते हैं। विचारोंकी तरह ही ये सदा ज़िन्दा रहते हैं—साहित्यिकोंमें वे जिनका साहित्य ज़िन्दा है।

नये देशमें

उस दिन जब मैं सोकर उठा, तो मैंने अपने आपको एक नये देश में पाया।

मैंने जब उस देशके राजाका नाम पूछा तो बोले—'अभी-अभी इस देशमें आमूल क्रान्ति हो चुकी है। इसीलिए अब यहाँ कोई राजा नहीं रहा। जो राजा थे वे प्रजा बन चुके हैं और अब प्रजा ही इस देश-की राजा है।'

मुझे बड़ा कौतूहल हुआ और मेरा मन वहाँकी विस्तृत जानकारी पानेके लिए बेचैन हो उठा।

सबसे पहिले मैंने वहाँकी प्रजाके दर्शन करना चाहा। जब मैं उसके बीच पहुँचा तो मैंने अपने आपको एक अजीब वर्गके द्वारा घिरा पाया। मैंने देखा—बड़े-बड़े राजा-महाराजा, उद्योगपति, मिल-मालिक, सरकारी अधिकारी और नेता मेरा स्वागत करनेके लिए खड़े थे। और दूर तारके घेरेके बाहर कुछ लोग रेंग रहे थे।

मैंने पूछा—'मैं यहाँ प्रजाके दर्शनोंके लिए आया हूँ। प्रजा कहाँ है?'

वे बोले—'क्या आपको नहीं मालूम? आमूल क्रान्तिके फलस्वरूप यहाँकी प्रजा अब राजा बन चुकी है, तथा हम ही अब इस देशकी आम प्रजा हैं।'

मैंने जब उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें पूछा तो मालूम हुआ कि अब तो यहाँ की प्रजा भी अत्यन्त समृद्ध हो चुकी है। वह बड़े-बड़े महलों और बंगलोंमें रहती तथा उद्योग-धन्धों और कारखानोंकी मालिक

है। प्रत्येकके पास अपनी निजी मोटर-गाड़ियाँ हैं। और सबका अपना निजी बैंक-बैलेन्स भी बन चुका है।

मैंने पूछा—'क्या आपको इस नवीन व्यवस्थामें कोई कष्ट भी है?'

बोले—'कष्ट की कौन बात! इस नये राज्यमें तो हम पहले से अधिक सुखी हैं। पहले तो हम पर कुछ जिम्मेदारियाँ भी थीं, अब तो हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। हमें 'जनताकी सेवाके लिए' राज्य और लोक-सभाओंमें जानेकी सुविधा है। देशके सर्वोच्च अधिकारी बननेकी सुविधा है। उद्योग और व्यापारके नामपर बड़ेसे बड़ा पूंजीपति बननेकी सुविधा है और महज भाषण और आश्वासनके बलपर मन्त्री और नेता बनने तककी सुविधा है। हाँ, सिर्फ़ एक बातका दुःख है और वह यह कि अब हमारे प्राचीन नामोंका लोप हो चुका है और अब हमें सब कुछ जनताके नामसे करना होता है।'

मैं उनके इस सुख और समृद्धि पर आश्चर्यचकित रह गया। मैंने सोचा, जब इतनी दूर आये हैं, तो क्यों नहीं यहाँकी राजा बनी हुई प्रजा के भी दर्शन कर लिये जायँ?

जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तो मैंने देखा वे सब राष्ट्र-निर्माणके लिए, कोई सड़कोंपर गिट्टी कूट रहे थे तो कोई बंगलोंके लिए गारा ढो रहे थे। उनका शरीर तपस्यासे कृश हो चुका था और उनके चेहरोंपर त्याग और कष्ट-सहनके चिह्न अंकित थे।

मैंने जब उनसे राज-काजके बारेमें पूछा, तो बोले—अब यहाँ सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है और यहाँके सारे कार्य प्रजाके लिए ही होते हैं। बड़े-बड़े नेता और मन्त्री भी प्रजाकी सेवाके लिए 'वोट' माँगते फिरते हैं, जैसे पहिले आटा माँगा जाता था और समस्त सरकारी कर्मचारी दस्तख़तोंमें अपने आपको जनताके विनम्र सेवक लिखने लगे हैं। राजा-महाराजाओंके लिए भी अब सेवाके लिए मिनिस्ट्री और गवर्नरोंके द्वार खुले हैं और पूंजीपति भी अब जनताकी सेवाके लिए अपनी सम्पत्तिमें निरन्तर वृद्धि

कर रहे हैं। ग्रामीण जनताके सर्वांगीण विकासके लिए आयोजित योजनाओंमें समूची जनता द्वारा जितना श्रमदान दिया जाता है उससे भी अधिक रकम पैट्रोल, पार्टी और मीटिंगमें खर्चकर, उच्चाधिकारी आते और उनके उद्घाटनोंमें अपना समान योगदान दे जाते हैं। रेलों, धर्मशालाओं एवम् मुसाफिरख़ानोंमें इतने सुधार हुए हैं कि लोगोंको अपने घर फीके लगने लगे हैं। खेती और ग्राम-उद्योगका इतना विकास हो चुका है कि वे अब किसान मजदूरोंके घर रहना नहीं चाहते वरन् उच्च शिक्षित वर्गके साथ भागकर अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठानेको लालायित हैं। आँकड़ों और रिपोर्टोंमें इतनी तरक़्क़ी हुई है कि देश योजनाओं एवम् भाषणोंकी फसलसे लहलहा उठा है।'

मैंने पूछा—'यह सब तो ठीक है, लेकिन आप लोगोंकी स्वयम् की स्थिति क्या है?'

बोले—'देशके कल्याणके लिए हम लोग दधीचिकी तरह अपना सर्वस्व उत्सर्ग किये रहते हैं। स्वयम् झोपड़ियोंमें रह कर यहाँके लक्ष-लक्ष जन, महलों और बंगलोंमें रहनेवाली अपनी प्रजाके लिए सड़कों, मैदानों, खेतों और कारख़ानोंमें महज रोटियोंके लिए श्रम करनेमें संलग्न हैं।'

एक क्षण मैं उनकी सहिष्णुता, त्याग और तपस्या-परायणता पर मुग्ध रह गया, कि तभी मुझे अपने सहयोगी साहित्यिकोंका ख़्याल हो आया और मैं बिना एक क्षणकी देरी किये उनसे मिलने जा पहुँचा। लेकिन जब मैं उनके दरवाजे पर पहुँचा, तो उनके शाही ठाट-बाट और मिलने-जुलनेके सरकारी तौर-तरीक़े देखकर दंग रह गया।

प्रारम्भिक कुशल-क्षेमके बाद जब मैंने उनकी साहित्यिक गति-विधिके बारेमें पूछा तो बोले—'अब हमें मौलिकताके नाम पर व्यर्थ श्रम नहीं करना पड़ता। सरकारसे बने-बनाये विषय मिल जाते हैं जिन पर एक निश्चित ढंगसे निश्चित समयके अन्दर लिखकर रचनाएँ दे देनी होती

हैं। स्वीकृति-अस्वीकृतिका भी अब कोई प्रश्न नहीं रहा, कारण पारिश्रमिककी रक़म भी अग्रिम ही मिल जाती है। साहित्य ही नहीं, अब तो लेखकोंको भी सरकारी संरक्षण प्राप्त हो चुका है। किसीको सरकारी प्रचारके साधन रेडियोमें ले लिया गया, तो किसीको किसी योजनासे सम्बन्धित पत्रके सम्पादन-विभागमें। कोई पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर रहे हैं, तो कोई सरकारी विज्ञप्तियाँ निकालनेमें संलग्न हैं।'

फिर बोले—'अब तो हमारा उद्देश्य साहित्यको भी आम जनताके लिए उपयोगी बनाना है। इसीलिए तो हम जनताके स्तरके अनुकूल हल्के-फुल्के साहित्यकी सृष्टि करनेमें संलग्न हैं।'

मैंने पूछा—'लेकिन आम जनता तो सूर तुलसी और कबीरकी भाषा भी स्वयम् उन्हींके शब्दोंमें समझनेमें समर्थ रही है। क्या आपके द्वारा प्रस्तुत साहित्यमें इतनी क्षमता है कि वह युगों-युगों तक लोगोंकी ज़बान पर तैरता रहे?'

वे कुछ कहने ही जा रहे थे, कि किसी उच्चाधिकारीकी मोटरका हार्न सुनायी दिया और वे उनसे मिलनेके लिए सीढ़ियों पर सीढ़ियाँ नीचे उतरते ही चले गये।



नव वर्षाङ्क-समारोह में

उस दिन एक पत्रकार महोदय द्वारा आयोजित, अपनी नई संतान-की तरह, नव वर्षांक-समारोहमें, देशके प्रायः समस्त गण्यमान्य-साहित्यिक उपस्थित थे। उनमें एक ओर यदि गम्भीर निबन्धकार, आलोचक, और शोधपूर्ण लेखोंके विशेषज्ञ उपस्थित थे, तो दूसरी ओर कवि, कहानीकार, व्यंग-निबन्धकार, जीवनी और संस्मरण लेखक, तथा कुछ सैटायर-बाज़ भी उपस्थित थे। साथ ही, बच्चोंकी तरह कुछ लघु निबन्ध, लघु कथाएं, लघु लघु नई कविताएँ, सानेट और गद्यकाव्य लेखक भी आ इकट्ठे हुए थे।

सबके बैठानेकी व्यवस्था एक आर्ट-पेपरसे निर्मित और कलात्मक-चित्रोंसे सुसज्जित, एक सुन्दर कक्षमें थी, जिसमें एक आधुनिकतम शैलीके नवीन चित्रकार द्वारा चित्रित मुखपृष्ठ-रूपी प्रवेश-द्वारसे होकर ही प्रवेश पाया जा सकता था। लेकिन कक्षका बहिरंग जितना सुन्दर था, उसके अन्तरंग आगन्तुक मेहमानोंको बैठानेकी व्यवस्था उतनी ही अव्यवस्थित थी। लगता है, जब जो भी आया, उसे जहाँ भी खाली जगह दिखी, वहीं बैठा दिया गया था।

यद्यपि सबसे पहिली पंक्तिमें हिन्दीके कुछ उद्‌भट विद्वान् और आलोचकगण उपस्थित थे, लेकिन उनसे भी आगे होकर एक अकेली कुर्सीपर एक नवीनतम कवि महोदय को बैठा दिया गया था। यह स्थान उन्हें उनके गुणपर रीझकर दिया था, उनके रूपपर, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनकी अतुकान्त कविता-सी अस्त-व्यस्त-वेश-भूषाका भी उसमें प्रमुख हाथ था—इतना स्पष्ट है।

आलोचकोंके बीच-बीच कुछ नेता और पदवीधारी मेम्बर भी घिर आये थे, यद्यपि यहाँ उनका उपयोग ज्ञानसे उतना नहीं था, जितना ग्रांट या पुरस्कार दिलानेसे।

आलोचकोंमें एक ओर जहाँ परम शान्त, गम्भीर, हिमालयकी तरह अपनी साधनामें रत, मनस्वी तपस्वियोंके दर्शन किये जा सकते थे, वहीं दूसरी ओर कुछ असफल लेखक भी सफल समालोचकोंमें अपना स्थान बनाये थे।

आलोचकोंसे पीछे पुनः कुछ कवि और उनके नज़दीक होकर कुछ कहानीकार बैठे थे। उन्हींके संग—साथमें, कुछ जीवनी और संस्मरण लेखक, व्यंग-निबन्धकार और सैटायर-बाज भी उपस्थित थे। सबसे पीछे अन्तिम पंक्तिमें निबन्धकारोंको बैठाया गया था, यद्यपि उनके भी पीछे कुछ खाली कुर्सियों पर पुस्तक-समालोचक आसीन थे। लेकिन उन्हें आजके समारोहका उपसंहार ही कहा जा सकता है, प्रमुख स्तम्भ नहीं।

सारे समारोहमें कवियोंका ठाठ निराला था। वे प्रत्येक वर्गके बीचमें चाहे वह कहानीकार हो या निबन्धकार, बीचकी खाली जगहमें अपना स्थान बनाये थे। कहीं-कहीं तो 'विन्डो' में से सजकर झाँकनेका गौरव भी उन्हें ही प्राप्त था।

समारोहका प्रारम्भ भी उपर्युक्त कवियोंके कविता-पाठसे ही हुआ। सबसे पहिले, पहिली पंक्तिमें बैठे कवि महोदयने, शिशुकी मंगलकामनासे युक्त अपनी एक रचना पढ़ी। उनके उठने, उठकर मञ्चपर आने और कविता पढनेका ढंग कुछ ऐसी शालीनता लिये हुए था, कि रचनासे—अधिक उसे पेश करनेके तौर-तरीकेपर सारी जनता मन्त्रमुग्ध रह गयी। उसके बाद, बारी-बारीसे सबने अपनी रचनाएँ सुनायीं। लेकिन उनमेंसे अधिकांश या तो पूर्व-प्रकाशित थीं, या कुछ इस क़दर लिखी गयी थीं कि उन्हें किसीकी भी वर्ष-गांठ पर नयीकी तरह पढ़ा जा सके। उनमें

ये चाँदके भाई-बन्द

आसमानके विशाल मञ्च पर खड़े होकर लक्ष-लक्ष ताराओंके समक्ष भाषण देते हुए उस दिन चाँदने कहा—'दोस्तो, धरती पर इस समय अन्धेर मचा हुआ है। कुछ गाँवों और शहरोंमें भले ही प्रकाश हो, लेकिन बड़े-बड़े वन-प्रान्त, पर्वत और समुद्र अन्धकारमें डूबे हुए हैं। कोई उनकी खोज-ख़बर लेनेवाला तक नहीं। अन्धकारमें हाथको हाथ नहीं सूझता। भले और बुरे की, झूठ और सच की, स्त्री और पुरुषकी पहचान नहीं रह गई है। सत्य पर परदा गिर चुका है। साँझ होते ही लोग घरों और घोंसलोंमें लौटने लगते हैं। सब ऐशो-आराममें डूबे हुए हैं। रात दस-दस बजे तक दूकानें बन्द नहीं हो पातीं। चारों ओर काला बाजार छाया हुआ है। कुछ लोग रातमें भी आचार और विचार करते नज़र आते हैं। यह सब भ्रष्टाचार नहीं तो और क्या है? यदि आप इस सारी अव्यवस्थासे मुक्ति चाहते हैं, तो अपना अमूल्य वोट मुझे ही दीजियेगा। देखिए, इस एक-सत्ताधारी, निरंकुश दिनके हौसले बढते ही जा रहे हैं। इसने हमारी रातकी सीमाको पीछेकी ओर खदेड़ना शुरू कर दिया है। अभी-अभी गरमीके दिनों तो—स्थिति यहाँ तक बिगड़ी थी कि दिन बड़े और रातें छोटी हो उठी थीं। वह तो मेरा ही दम खम था जिसने जाड़ेके लगते न लगते, रातोंको पुनः बड़ी बनाकर ही चैन ली। लेकिन याद रखिये, यदि आपने दिनकी इस बढ़ती हुई ताक़तका मुक़ाबला नहीं किया तो एक दिन वह समूची रातको निगल जानेवाला है। और तब इस विशाल धरती और आसमानमें आपके लिए कहीं ठौर-ठिकाना नहीं रह जाने वाला है। यदि आप अपना अमूल्य वोट मुझे देते हैं तो मैं अपनी निर्मल चाँदनी रातकी तरह दिनको दूधका

धोया बनानेका वादा करता हूँ। याद रखिये, मेरी पेटीका रंग काला है, और अपने अधिकारोंकी रक्षाके लिए 'रात-छाप' पेटीमें ही अपना वोट दीजिएगा।'

कहते है चाँदकी यह सभा चल ही रही थी कि इसी बीच उसके विरोधी उम्मीदवार सूर्यके आनेका पता चला। उसके आनेकी खबर लगते ही तारे सिर पर पाँव रखकर भाग खड़े हुए और चाँदका चेहरा भी फक रह गया।

उसने आकर न तो किसी सभाका आयोजन किया, न भाषण दिया, न कोई योजना पेश की, न कमेटी बनाई, वरन् धरती पर पाँव रखनेके साथ वह अपने काममें जुट गया और उसके काममें जुटते ही, लक्ष-लक्ष जन अपने घरों और घोंसलोंको छोड़ खेतों और कारखानोंकी ओर चल दिये। सर्वत्र हर्ष और उल्लास छा गया। तथा दिन भरके अथक परिश्रमके बाद बिना किसी रिपोर्टके लोगोंने यह महसूस किया कि सुबहसे शामको वे अधिक खुशहाल हैं और धरतीका उत्पादन अनन्त-गुना बढ गया है।

कहते हैं उसके बादसे चाँदके भाई-बन्द रोज रातमें सभाओंका आयोजन करते आये हैं, लेकिन दिनके कार्योंके समक्ष उनकी एक नहीं चलती !



नव वर्षाङ्क-समारोह में

उस दिन एक पत्रकार महोदय द्वारा आयोजित, अपनी नई संतान-की तरह, नव वर्षांक-समारोहमें, देशके प्रायः समस्त गण्यमान्य-साहित्यिक उपस्थित थे। उनमें एक ओर यदि गम्भीर निबन्धकार, आलोचक, और शोधपूर्ण लेखोंके विशेषज्ञ उपस्थित थे, तो दूसरी ओर कवि, कहानीकार, व्यंग-निबन्धकार, जीवनी और संस्मरण लेखक, तथा कुछ सैटायर-बाज़ भी उपस्थित थे। साथ ही, बच्चोंकी तरह कुछ लघु निबन्ध, लघु कथाएं, लघु लघु नई कविताएँ, सानेट और गद्यकाव्य लेखक भी आ इकट्ठे हुए थे।

सबके बैठानेकी व्यवस्था एक आर्ट-पेपरसे निर्मित और कलात्मक-चित्रोंसे सुसज्जित, एक सुन्दर कक्षमें थी, जिसमें एक आधुनिकतम शैलीके नवीन चित्रकार द्वारा चित्रित मुखपृष्ठ-रूपी प्रवेश-द्वारसे होकर ही प्रवेश पाया जा सकता था। लेकिन कक्षका बहिरंग जितना सुन्दर था, उसके अन्तरंग आगन्तुक मेहमानोंको बैठानेकी व्यवस्था उतनी ही अव्यवस्थित थी। लगता है, जब जो भी आया, उसे जहाँ भी खाली जगह दिखी, वहीं बैठा दिया गया था।

यद्यपि सबसे पहिली पंक्तिमें हिन्दीके कुछ उद्‌भट विद्वान् और आलोचकगण उपस्थित थे, लेकिन उनसे भी आगे होकर एक अकेली कुर्सीपर एक नवीनतम कवि महोदय को बैठा दिया गया था। यह स्थान उन्हें उनके गुणपर रीझकर दिया था, उनके रूपपर, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनकी अतुकान्त कविता-सी अस्त-व्यस्त-वेश-भूषाका भी उसमें प्रमुख हाथ था—इतना स्पष्ट है।

आलोचकोंके बीच-बीच कुछ नेता और पदवीधारी मेम्बर भी घिर आये थे, यद्यपि यहाँ उनका उपयोग ज्ञानसे उतना नहीं था, जितना ग्रांट या पुरस्कार दिलानेसे।

आलोचकोंमें एक ओर जहाँ परम शान्त, गम्भीर, हिमालयकी तरह अपनी साधनामें रत, मनस्वी तपस्वियोंके दर्शन किये जा सकते थे, वहीं दूसरी ओर कुछ असफल लेखक भी सफल समालोचकोंमें अपना स्थान बनाये थे।

आलोचकोंसे पीछे पुनः कुछ कवि और उनके नज़दीक होकर कुछ कहानीकार बैठे थे। उन्हींके संग—साथमें, कुछ जीवनी और संस्मरण लेखक, व्यंग-निबन्धकार और सैटायर-बाज भी उपस्थित थे। सबसे पीछे अन्तिम पंक्तिमें निबन्धकारोंको बैठाया गया था, यद्यपि उनके भी पीछे कुछ खाली कुर्सियों पर पुस्तक-समालोचक आसीन थे। लेकिन उन्हें आजके समारोहका उपसंहार ही कहा जा सकता है, प्रमुख स्तम्भ नहीं।

सारे समारोहमें कवियोंका ठाठ निराला था। वे प्रत्येक वर्गके बीचमें चाहे वह कहानीकार हो या निबन्धकार, बीचकी खाली जगहमें अपना स्थान बनाये थे। कहीं-कही तो 'विन्डो' में से सजकर झाँकनेका गौरव भी उन्हें ही प्राप्त था।

समारोहका प्रारम्भ भी उपर्युक्त कवियोंके कविता-पाठसे ही हुआ। सबसे पहिले, पहिली पंक्तिमें बैठे कवि महोदयने, शिशुकी मंगलकामनासे युक्त अपनी एक रचना पढ़ी। उनके उठने, उठकर मञ्चपर आने और कविता पढ़नेका ढंग कुछ ऐसी शालीनता लिये हुए था, कि रचनासे—अधिक उसे पेश करनेके तौर-तरीकेपर सारी जनता मन्त्रमुग्ध रह गयी। उसके बाद, बारी-बारीसे सबने अपनी रचनाएँ सुनायीं। लेकिन उनमेंसे अधिकांश या तो पूर्व-प्रकाशित थीं, या कुछ इस क़दर लिखी गयी थीं कि उन्हें किसीकी भी वर्ष-गांठ पर नयीकी तरह पढ़ा जा सके। उनमें

नव वर्षाङ्क-समारोह में

उस दिन एक पत्रकार महोदय द्वारा आयोजित, अपनी नई संतान-की तरह, नव वर्षांक-समारोहमें, देशके प्रायः समस्त गण्यमान्य-साहित्यिक उपस्थित थे। उनमें एक ओर यदि गम्भीर निबन्धकार, आलोचक, और शोधपूर्ण लेखोंके विशेषज्ञ उपस्थित थे, तो दूसरी ओर कवि, कहानीकार, व्यंग-निबन्धकार, जीवनी और संस्मरण लेखक, तथा कुछ सैटायर-बाज़ भी उपस्थित थे। साथ ही, बच्चोंकी तरह कुछ लघु निबन्ध, लघु कथाएं, लघु लघु नई कविताएँ, सानेट और गद्यकाव्य लेखक भी आ इकट्ठे हुए थे।

सबके बैठानेकी व्यवस्था एक आर्ट-पेपरसे निर्मित और कलात्मक-चित्रोंसे सुसज्जित, एक सुन्दर कक्षमें थी, जिसमें एक आधुनिकतम शैलीके नवीन चित्रकार द्वारा चित्रित मुखपृष्ठ-रूपी प्रवेश-द्वारसे होकर ही प्रवेश पाया जा सकता था। लेकिन कक्षका बहिरंग जितना सुन्दर था, उसके अन्तरंग आगन्तुक मेहमानोंको बैठानेकी व्यवस्था उतनी ही अव्यवस्थित थी। लगता है, जब जो भी आया, उसे जहाँ भी खाली जगह दिखी, वहीं बैठा दिया गया था।

यद्यपि सबसे पहिली पंक्तिमें हिन्दीके कुछ उद्भट विद्वान् और आलोचकगण उपस्थित थे, लेकिन उनसे भी आगे होकर एक अकेली कुर्सीपर एक नवीनतम कवि महोदय को बैठा दिया गया था। यह स्थान उन्हें उनके गुणपर रीझकर दिया था, उनके रूपपर, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनकी अतुकान्त कविता-सी अस्त-व्यस्त-वेश-भूपाका भी उसमें प्रमुख हाथ था—इतना स्पष्ट है।

आलोचकोंके बीच-बीच कुछ नेता और पदवीधारी मेम्बर भी घिर आये थे, यद्यपि यहाँ उनका उपयोग ज्ञानसे उतना नहीं था, जितना ग्रांट या पुरस्कार दिलानेसे।

आलोचकोंमें एक ओर जहाँ परम शान्त, गम्भीर, हिमालयकी तरह अपनी साधनामें रत, मनस्वी तपस्वियोंके दर्शन किये जा सकते थे, वहीं दूसरी ओर कुछ असफल लेखक भी सफल समालोचकोंमें अपना स्थान बनाये थे।

आलोचकोंसे पीछे पुनः कुछ कवि और उनके नज़दीक होकर कुछ कहानीकार बैठे थे। उन्हींके संग—साथमें, कुछ जीवनी और संस्मरण लेखक, व्यंग-निबन्धकार और सैटायर-बाज भी उपस्थित थे। सबसे पीछे अन्तिम पंक्तिमें निबन्धकारोंको बैठाया गया था, यद्यपि उनके भी पीछे कुछ खाली कुर्सियों पर पुस्तक-समालोचक आसीन थे। लेकिन उन्हें आजके समारोहका उपसंहार ही कहा जा सकता है, प्रमुख स्तम्भ नहीं।

सारे समारोहमें कवियोंका ठाठ निराला था। वे प्रत्येक वर्गके बीचमें चाहे वह कहानीकार हो या निबन्धकार, बीचकी खाली जगहमें अपना स्थान बनाये थे। कहीं-कहीं तो 'विन्डो' में से सजकर झाँकनेका गौरव भी उन्हें ही प्राप्त था।

समारोहका आरम्भ भी उपर्युक्त कवियोंके कविता-पाठसे ही हुआ। सबसे पहिले, पहिली पंक्तिमें बैठे कवि महोदयने, शिशुकी मंगलकामनासे युक्त अपनी एक रचना पढ़ी। उनके उठने, उठकर मञ्चपर आने और कविता पढ़नेका ढंग कुछ ऐसी शालीनता लिये हुए था, कि रचनासे—अधिक उसे पेश करनेके तौर-तरीकेपर सारी जनता मन्त्रमुग्ध रह गयी। उसके बाद, बारी-बारीसे सबने अपनी रचनाएँ सुनायीं। लेकिन उनमेंसे अधिकांश या तो पूर्व-प्रकाशित थीं, या कुछ इस क़दर लिखी गयी थीं कि उन्हें किसीकी भी वर्ष-गांठ पर नयीकी तरह पढ़ा जा सके। उनमें

जो रचनाएँ सचमुच सुन्दर थीं, उन्हें सबसे बादमें समय दिया गया था, कारण वे आजके समारोह और सम्पादकीय स्तरके कुछ अनुकूल नहीं पड़ती थीं।

कहते हैं, कुछ कहानीकारोंने भी जनताका पर्याप्त मनोरञ्जन किया लेकिन निबन्ध और आलोचनाएँ कुछ जमीं नहीं। कारण, आजके समारोहमें जिस तरहके हल्के-फुल्के वातावरणका निर्माण किया गया था, उसमें गरिष्ट अन्नकी तरह वे कुछ पचीं नहीं—ऐसा कुछका मत था।

सारे समारोहमें सिर्फ़ एक बात सबको अखरी और वह यह कि कुछ निमन्त्रित महानुभावोंको स्थानाभावके कारण वापिस लौटना पड़ा था। उसका कारण महज स्थानाभाव ही हो—यह बात नहीं थी, कारण कुछ अनिमंत्रित व्यक्तियोंने सम्पादक महोदयसे अपना रिश्ता जाहिर करते हुए पहिलेसे ही कुछ प्रमुख स्थानोंपर अपना कब्जा जमा लिया था और जिसके लिए स्वयम् सम्पादक महोदयको भी अन्तमें खेद प्रकाश करना पड़ा था।

लेकिन कुछ हो, सब मिलाकर सारा समारोह अत्यन्त ही सफल रहा, महज इसलिए नहीं कि उसमें उपस्थित महानुभावोंका स्तर पर्याप्त उच्च था वरन् इसलिए भी कि उसकी समाप्तिसे पूर्व ही उपस्थित पत्र-पुस्तक समालोचकोंने उसकी प्रशंसाके पुल बाँधने शुरू कर दिये थे।



बीसवीं सदी

उस दिन जब उन्नीसवीं सदी विदा होने जा रही थी और बीसवीं धरती पर अपना प्रथम चरण रखने, तब एक पत्रकार महोदय तेजीसे अपने कमरेमें टहलते नजर आ रहे थे। वे इस बातसे अत्यन्त परेशान थे कि वे आज तक किसी भी घटना या नये व्यक्तिके आनेपर उसका परिचय जगत्‌से कराते आये हैं, लेकिन आज सौ वर्षके बाद घटित होनेवाली इतनी बडी घटनाके सम्बन्धमें उन्हें कोई पूर्व जानकारी प्राप्त नहीं थी। ऐरोप्लेनसे उतरनेवाले यात्रीकी तरह वह सीधे स्वर्गसे उतरी और प्रभातके वेटिंग रूममें कुछ क्षण ठहरकर, सूर्यकी प्रथम किरणके साथ, धरतीपर प्रवेश करने जा रही थी। उसके आगमनसे पूर्व उसके सम्बन्धमें न तो कोई कल्पना की जा सकती थी और न उसके पूर्वाभास-से ही कोई जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। वे गहरी निराशामें डूबे थे कि इसी बीच उन्हें जाने क्या सूझा कि उनका चेहरा आनन्द और सफलताकी आशामें खिल उठा, और वे बिना एक क्षणकी भी देरी किये पावोंमें चप्पल डाल, हाथ में काग़ज और क़लम ले, उसके कक्षमें जा पहुँचे।

वहाँ पहुँचते ही उन्होंने उससे नमस्ते की और बिना किसी पूर्व भूमिका के, पत्रकार-सुलभ दृढ़ता से कहा—'जी मै आपसे इण्टरव्यू लेना चाहता हूँ।'

पूछा—'इण्टरव्यू ?'

बोले—'जी हाँ, इण्टरव्यू। यह एकदम नया प्रयोग है। इसमें आपको करना कुछ भी नहीं है। मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछता जाऊँगा

और आप उसके जवाब देती जाइएगा। बस, इतनेसे मेरा काम सध जायेगा।'

'देखिए! सबसे पहिले मैं आपसे यह जानना चाहूँगा कि इस नये युगकी नयी विशेषताएँ क्या होंगी। यानी कि आप अपने आगमनके साथ किन नयी मान्यताओं, विश्वासों और परम्पराओंको जन्म देने जा रही हैं?'

मुसकराते हुए उन्होंने कहा—'अच्छा तो लिखिए। इस नये युगकी सबसे नयी विशेषता होगी अभी अभी आपके द्वारा प्रयुक्त शब्द—'इण्टरव्यू और अभिनन्दन' की प्रथाओंका जन्म। यद्यपि देखनेमें ये दोनों शब्द अत्यन्त छोटे प्रतीत होते हैं, लेकिन इस युगमें इनका प्रभाव महान् क्रान्तिकारी होगा। आप किसी भी अपरिचित व्यक्ति से, यह कहकर कि 'मैं आपसे 'इण्टरव्यू' लेना चाहता हूँ' स्वयम् सम्मान पायेंगे। और किसी सचमुचके सम्माननीय व्यक्तिसे महज इतना कहने पर कि 'मैं आपका अभिनन्दन करना चाहता हूँ' उसके हृदयमें अपना अमिट स्थान बना लेंगे।'

'अभी तक किसी भी व्यक्तिसे उसके मुँहपर उसका परिचय पूछना असभ्यता माना जाता था, लेकिन अब आजसे जो भी ऐसी बातें पूछेगा, उसका वह कार्य 'इन्टरव्यू' के नामसे समस्त सभ्य जगत्में सम्मान पायेगा। बड़े-बड़े साहित्यिक और राजनीतिज्ञ अपना इण्टरव्यू देनेके लिए लालायित नजर आयेंगे। और उनकी वह 'अपने मुँह अपनी बात' सर्वत्र रुचिसे पढ़ी जावेगी।

'इण्टरव्यूके साथ ही जुड़ी चले आने वाली इस युग की दूसरी विशेषता होगी 'अभिनन्दन-समारोहों' का आयोजन। इस युगमें कोई भी आदमी तब तक बड़ा नहीं कहलायेगा, जब तक कि उसका अभिनन्दन कर, उसे सार्वजनिक रूपसे सम्मानित घोषित नहीं किया जावे। इसके नाना स्वरूप होंगे। यदि जिसका सम्मान करना है वह

व्यक्ति साधारण हुआ, तो उसका अभिनन्दन भी साधारण-सी सभामें साधारण सजावट कर, साधारण जनोंके बीच, मौखिक रूपसे उसके मुँह पर उसकी प्रशंसाके कुछ शब्द कहकर किया जा सकेगा। यदि वह व्यक्ति असाधारण सत्ताप्राप्त हुआ, तो उसका अभिनन्दन खुली सभामें, खुले चौकमें, चार आदमियोंके सामने, उसके मुँहपर एक लिखित अभिनन्दन पढ़कर किया जावेगा। और यदि वह व्यक्ति विशेष सत्ता-प्राप्त राजनीतिज्ञ या साहित्यिक हुआ तो फिर उसके लिए एक विशेष अभिनन्दन-समिति का संगठन कर, कोई चाहे या न चाहे, प्रत्येकसे उसकी प्रशंसामें रचनाएँ मँगा और जो लिखनेमें अपनी असमर्थता जाहिर करें उन्हें पुरस्कारका प्रलोभन दे, या उनसे पूर्व स्वीकृति ले, स्वयम् उनकी ओरसे लिखकर, एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थका निर्माण किया जावेगा। और स्वयम् उन्हींके नामसे उसका नामकरण कर, एक विशेष समारोहमें विशिष्ट जनोंके बीच, उनसे अधिक उम्रके और यदि हो सके तो अधिक विद्वान् आदमीके हाथों उनके चरणोंमें उसे समर्पित किया जावेगा।'

पत्रकारने जल्दी-जल्दी नोट्स लेते और परम प्रसन्नता जाहिर करते हुए पूछा—'अच्छा तो इस नयी सदीमें आपके आवास और निवासकी क्या व्यवस्था होगी? यह भी जाननेकी उत्सुकता है।'

वे बोलीं—'जिस तरह वैचारिक क्षेत्रमें इन्टरव्यू और अभिनन्दन मेरे नवीनतम स्वरूप होंगे, उसी तरह आवास और निवासके सम्बन्धमें भी मेरी सर्वथा नवीन मान्यताएँ होंगी। मेरा वास न तो प्राचीन आश्रमोंमें होगा, न नवीन बँगलोंमें, न तो झोपड़ीमें होगा, न राज-प्रासादोंमें। वरन् मेरा वास तो उसी घरमें होगा, जिसकी नींवें खासकर मेरे लिए किसी राजकीय पुरुषके द्वारा, 'शिलान्यास' समारोहके रूपमें डाली जायेगी।' और वे गुनगुनाईं—'कितना सुन्दर शब्द है—शिलान्यास-समारोह।'

पत्रकारने पूछा—'लेकिन इसका क्या भरोसा कि शिलान्यास-समारोहके पश्चात् वह भवन तैयार हो ही जावेगा ?'

वे दृढ़तासे बोलीं—'इसकी व्यवस्था भी मैंने कर ली है। प्रत्येक भवनके शिलान्यास-समारोहके पश्चात् उसका एक उद्घाटन-समारोह भी होगा। बीच-बीचमें, यदि आवश्यक हुआ तो, ईंटान्यास-समारोह भी किया जा सकता है। जिस तरह प्राचीन कालमें मनुष्य, कुछ माङ्गलिक पूजाके बाद ही नवीन गृहमें प्रवेश करता था, उसी तरह आधुनिक कालमें—मनुष्य उद्घाटन-समारोहके पश्चात् ही नये गृहोंमें प्रवेश पा सकेगा।'

पत्रकारने पूछा 'इस नये युगमें आपकी वेश-भूषा क्या होगी ? और इस असंख्य मानवोंसे भरे जगत्में आपको किस स्वरूपमें पहिचान पाऊँगा ?'

वे बोलीं—'चूँकि यह अत्यन्त कामकाजी युग होगा, अतएव इसमें वस्त्रोंकी बहुलताको सम्पन्नताका प्रतीक नहीं माना जावेगा वरन् इस युगमें तो जो नर-नारी जितने कम वस्त्र धारण करेंगे, वे उतने अधिक सभ्य और शिष्ट माने जावेंगे। इसमें कुछ नवीन परिधानोंका भी प्रचलन होगा, मसलन कोट और कुर्तेकी जगह 'बुश-शर्ट' और चप्पल एवं जूतेकी जगह 'सैण्डिल' सम्मान पायेंगे। नर और नारीके वेश-भूषामें भी कोई विशेष अन्तर नहीं रहेगा। कारण, पुरुष स्वयम् स्त्रियोंकी तरह मुच्छ-विहीन सुन्दर चेहरेवाले होंगे और कोई-कोई तो लम्बे केश रखा चोटियाँ तक काढ़ेंगे। बदलेमें स्त्रियाँ 'पेटी-कोट' की जगह 'पैण्ट और कोट' पहिन, घरसे लगाकर दफ्तरों तकमें, रोब ग़ालिब करते नज़र आयेंगी। और घरमें ही नहीं, राह चलते, सड़कों तक पर, स्त्रियोंके लिए पुरुषोंको जगह छोड़नी होगी और उन्हें अपनेसे ऊपर सम्मान देना होगा।'

परम सन्तोष जाहिर करते हुए पत्रकारने पूछा—'अच्छा तो इस युगका सबसे लोकप्रिय व्यक्ति कौन होगा, महोदया ?'

तनिक मुसकराते हुए वे बोलीं—'वैसे तो इस युगमें बड़े-बड़े निबन्धकार, उपन्यासकार और कहानीकार होंगे, लेकिन इस युगका सबसे लोक-प्रिय व्यक्ति होगा 'कवि'। 'कवि' की जिसको स्त्री और पुरुष दोनों वर्गोंको समान प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा। इसके बिना न तो कोई सम्मेलन सफल होंगे न सांस्कृतिक आयोजन। इसको लेकर ही पत्रोंका रूप निखरेगा और सम्मेलनोंकी सफलता आँकी जायेगी। यद्यपि इनकी रीत जगत्की रीतसे उलटी होगी, कारण इनमें न तो पुरुषोंकी तरह युद्ध-क्षेत्रमें जानेकी क्षमता होगी, और न स्त्रियोंकी तरह घर-कार्य चलानेकी, इसलिए ये कभी-कभी दिनमें भी सोते, और मूड आने पर रात-रात भर जागते नज़र आयेंगे, फिर भी इनकी वाणीमें इतनी सामर्थ्य होगी कि वह लोगोंको रात-रातभर मंत्र-मुग्ध किये रहनेकी क्षमता रखेगी।'

पत्रकारने एक मधुर चुटकी लेते-से पूछा—'तो फिर उसके प्यार-व्यारका क्या होगा, महोदया ?'

तनिक हँसते हुए वे बोलीं—'इसकी व्यवस्था भी मैंने कर दी है। वे जिस तरह कल्पना-लोकके भावना-प्रधान प्राणी होंगे, उनके प्यारकी अधिकारिणी भी ठीक उसी तरहकी साकार, सजीव, पत्नीसे भिन्न, एक अज्ञात-लोकवासिनी 'प्रेयसी' होगी। 'प्रेयसी' कि जिसे न तो पत्नी कहा जा सकता, न बहन ! फिर भी जो कभी बादलोंसे झाँककर और कभी बिजलियोंसे चमककर उनका मनोरंजन करती नजर आयेगी।''

अन्तमें पत्रकारने पूछा—'एक बात और जाननेकी इच्छा है महोदया ! इस विचित्र राग-रंग और वेश-भूषा वाले युगकी व्यवस्थाका क्या होगा ? यानी कि इस युगका सबसे शक्तिशाली व्यक्ति कौन होगा ?'

वे बोलीं—'इस युगका सबसे शक्तिशाली व्यक्ति न तो संत होगा न शासक, न साहित्यिक होगा, न धुरन्धर राजनीतिज्ञ। फिर भी

जिसकी बात झोपड़ीसे लेकर राज-प्रासादों तक सुनी जायेगी और जिसके आने पर सब जिसे सम्मान देंगे, और जिसके बोलने पर सब जिसे चुप होकर सुनेंगे'—

पत्रकारने बीच ही में बात काटते पूछा—'उसका नाम क्या होगा महोदया ?'

वे बोलीं—'उसका नाम होगा 'मेम्बर'। सुन्दर सुकुमार, कलात्मक पाँच अंगुलियोंमें अँगूठेकी तरह उसकी मुट्ठीमें सब कुछ होगा। अव्यक्त ब्रह्मकी तरह वह कहीं न होकर भी सब जगह और कुछ न होकर भी सब कुछ होगा। परम शक्तिशाली होनेपर भी वह गीता के स्थितप्रज्ञ की तरह सुख और दुःख, योग्यता और अयोग्यता, एवम् ज्ञान और अज्ञानके समस्त भेदभावोंसे परे होगा।'

और वे कहती ही गयीं—'इस युगकी लिखावटमें भी कुछ आमूल परिवर्तन होंगे, मसलन कविताके क्षेत्रमें कुछ ऐसे नवीन प्रयोग होंगे जिन्हें न तो गद्य कहा जा सकता न पद्य। फिर भी जो देखनेमें कविता लगेंगे और पढ़नेमें गद्यका मजा दे जायेंगे।

जीवनी और संस्मरणकी जगह इन्टरव्यू, यात्रा-संस्मरणकी जगह रिपोर्ताज, और गम्भीर निबन्धोंकी जगह व्यंगात्मक सैटायरोंका इस युगमें बहुतायतसे प्रचलन होगा।''

इसी बीच पत्रकारने देखा—सुदूर पूर्वकी लालिमा गायब हो चुकी थी और तभी सूर्यकी प्रथम किरणोंके साथ, बीसवीं सदीने धरती पर अपना पदार्पण किया।



चुटकुलेवाला

उस दिन सुबह-सुबह जैसे ही मैं सोकर उठा, मैंने सुना कोई आवाज़ लगा रहा था—'चुटकुले लो, चुटकुले।'

मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ, और मैंने उसे बुलाकर पूछा—'क्यों जी! चुटकुले भी कोई बेचनेकी चीज़ है?'

वह बोला—'आप भी अजीब हैं बाबू! इस दुनियामें क्या है जो बेचनेसे बचा हो? यहाँ कवियोंके स्वप्न, कलाकारोंकी भावनाएँ, दार्शनिकोंके विचार, सब कुछ बिकते हैं! रूप, रंग, रस, गंध, आप जो भी चाहें खुले बाजार खरीद सकते हैं!'

'यह जो आपके कमरेमें आईना लगा है न, इसे मैं 'रूपकी तस्वीर' मानता हूँ। इसके सामने खड़े होकर आप चाहे जब चाहें जितने स्नैप्स ले सकते हैं। क्या मजाल जो आपकी शकल और इसकी तस्वीरमें जरा भी फर्क आ जाये! सो, जिस तरह बाबू! आईनेमें हमें हमारा सच्चा 'स्वरूप-दर्शन' होता है उसी तरह इन चुटकुलोंमें आप अपना वास्तविक 'स्वभाव-दर्शन' कर सकते हैं। मेरा तो यह दावा है बाबू! कि आदमी चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, यदि वह चाहे तो किसी-न-किसी चुटकुलेमें अपनी तस्वीर अवश्य पा जायेगा।'

मैंने कहा—'ठीक है भई! लेकिन आखिर तुम्हारी यह चुटकुलोंकी खरीद-फरोख्त किस प्रकार चलती है?'

वह बोला—'इसका तो बड़ा सरल नियम है बाबू! बात यह है कि मैं अपना एक चुटकुला आपको सुनाऊँगा, और उसकी एवज़में आपसे एक सुनूँगा। और यूँ, मैं तब तक आपको अपने चुटकुले सुनाता रहूँगा, जब तक कि आप उनमें अपनी तस्वीर न पा जायें। और तब

आपको अपनी पसन्दका चुटकुला सौंपकर, और आपसे सुना चुटकुला लेकर, मैं किसी दूसरे ग्राहककी तलाशमें चल दूँगा। यूँ मेरी चुटकुलोंकी झोली भरती जायेगी।'

मैंने पूछा—'लेकिन इससे तुम्हें लाभ क्या मिलेगा?'

वह बोला—'लाभ बाबू? मैं इन्सानके चेहरे पर पड़ी झूठे दम्भकी नकाबको उघाड़ फेंकना चाहता हूँ, और यूँ मानवताको उसकी वास्तविक तस्वीरका एक अल्बम भेंट करना चाहता हूँ।' और वह कहता ही गया—'इन चुटकुलोंकी तलाशमें, बाबू! मैंने सारे देशकी खाक छानी है। और जहाँ भी मैं पहुँचा, वहाँसे कुछ सुन्दर चुटकुले पा सका हूँ। मेरा तो विश्वास है, बाबू! 'आदमी क्या है, गुलदस्तेकी तरह मुसकराता हुआ एक सुन्दर चुटकुला!'

और फिर उसने अपने संस्मरण सुनाते हुए बताया—''एक दिन मैं बड़ी सुबह, एक नव-विवाहित दम्पत्तिके यहाँ पहुँचा। मैंने देखा वे रातके एक सपनेको लेकर झगड़नेमें व्यस्त थे। पत्नी कह रही थी—'यदि मुझे पहिले मालूम होता, तो मैं आपसे हरगिज शादी नहीं करती। मैं नहीं जानती थी कि आप भी ऐसे हैं।'

पतिने पूछा—'आख़िर बात क्या है? आज सुबह-सुबह इस क़दर चायकी तरह उबली क्यों जा रही हो?'

पत्नीने कहा—'बातें मत बनाओ! मैंने तुम्हारी सब हरकतें देख लीं। आज रात सपनेमें मैंने देखा आप दूसरी स्त्रीसे घुल-घुलकर प्यार की बातें कर रहे थे।'

पतिने कहा—'लेकिन वह तो सपना है। उसका मैं क्या कर सकता हूँ?'

पत्नीने कहा—'सपना है तो क्या हुआ! जब आप मेरे सपनेमें ऐसी हरकतें करते हैं, तो अपने सपनेमें क्या करते होंगे?'

× × ×

मैंने सोचा, यह एक स्वप्नद्रष्टा नव-विवाहित दम्पत्तिकी बातचीत है। आख़िर इसमें ऐसे रंगीनी न होगी, तो और कहाँ होगी ! अतएव मैं दूसरे दिन एक बुद्धिजीवी वकील साहबके यहाँ पहुँचा। वे उस समय बड़े रोबसे, अभी-अभी खिंचवाई अपनी एक तस्वीर, पत्नीको दिखलानेमें व्यस्त थे। उसमें वे बड़ी शानसे अपनी पैन्टकी जेबोंमें हाथ डाले खड़े थे। पत्नीने बड़े ग़ौरसे उसे देखा, और तपाकसे बोली—'यह आपकी तसवीर हरगिज नहीं हो सकती।'

बेचारे पति महोदय सकपकाये, और पूछा—'क्यों ?'

बोली—'वकीलके हाथ सदा दूसरोंकी जेबमें होते हैं, इसमें तो आपके हाथ अपनी जेबमें हैं।'

× × ×

'तीसरे दिन मैं एक बेकारीसे परेशान युवकके यहाँ पहुँचा, वह सर्विसके लिए दिये गये अपने आवेदनपत्रके परिणामस्वरूप एक इन्टरव्यू देनेमें संलग्न था। इन्टरव्यूके समय उससे पूछा गया—'तुम्हारी उम्र क्या है ?'

वह बोला—'२७ वर्ष, सर !'

पूछा—'तुम्हें कामका अनुभव कितने वर्षका है ?'

बोला—'२० वर्षका, सर !'

कुछ आश्चर्यचकित होतेसे पूछा—'अच्छा, तो तुमने सर्विस किस उम्रसे शुरू की ?'

बोला—'१७ वर्षकी उम्रसे, सर !'

पूछा—'फिर तुम्हें कामका अनुभव २० वर्षका कैसे हुआ ?'

बोला—'ओव्हर-टाइम भी किया था, सर !'

× × ×

'वहाँसे लौटते समय, एक अदालतमें गवाही देती लड़की पर मेरी नजर पड़ गई। जज महोदय उससे पूछ रहे थे—'तुम्हारी उम्र क्या है?'

वह बोली—'मुझे नहीं मालूम।'

पूछा—'कुछ तो मालूम होगा।'

बोली—'जी नहीं, कुछ भी नहीं मालूम।'

पूछा—'घरमें चर्चा होती होगी। माता-पितासे भी तो कुछ सुना होगा।'

बोली—'वह तो सुना है महाशय, लेकिन आप 'आइ·विट्नेस' (Eye-witness) माँगेंगे!'

× × ×

लगता है, आज मुहूर्त देखकर ही घरसे निकला था। आगे बढ़ा तो एक स्कूलमें एक इन्स्पेक्टर साहब बच्चोंसे पूछ रहे थे—'बच्चो! जब एक रेलगाड़ी एक प्लेटफार्मको दो मिनटमें क्रास करती है, तो बताओ मेरी उम्र क्या है?'

सुनते ही एक क्षण मैं भी ठिठक कर रह गया। सारी क्लासमें सन्नाटा छाया था।

इसी बीच एकने कहा—'४० साल, सर!'

उन्होंने खीज कर पूछा—'तुमने कैसे जाना?'

बोला—'सर! मेरा एक भाई है। उसकी उम्र २० वर्षकी है। वह आधा पागल है। सोचा, आप अवश्य ४० के होने चाहिए!'

× × ×

मन-ही-मन हँसते, और उसके जवाबकी दाद देते, वहाँसे खिसका तो राह चलते मेरी मुलाक़ात एक वकील साहबके क्लाइंटसे हो गयी। सुना था, उन्होंने विनोबाके भूमि-दान आन्दोलनसे प्रभावित होकर अपना एक दिन बुद्धिदानमें दे दिया था। मैंने पूछा—'क्यों भाई

साहब ! क्या सचमुच वे इस दिन अपने यहाँ आनेवालोंसे कोई फ़ीस नहीं लेते ?'

उन्होंने भी उसी लहजेमें जवाब दिया—'जी हाँ ! वे इस दिन अपने यहाँ आनेवालोंसे कोई फ़ीस नहीं लेते ।' वरन् सबको यह निःशुल्क सलाह देते हैं कि—'कल फ़ीस लेकर आओ ।'

× × ×

अन्तमें सोचा, क्यों नहीं घर पहुँचते-पहुँचते अपने एक मित्रसे भी मिलता चलूँ ! इससे दो लाभ होंगे । एक तो मुलाक़ात हो जावेगी, और दूसरे चायका मुहूर्त भी सध जायेगा । लेकिन उनके यहाँ पहुँचकर ख़्याल आया वे तो अविवाहित हैं ! यद्यपि इससे मेरी चायमें कोई फर्क नहीं आया । फिर भी जाने क्यों, अपने मित्रके इस अव्यवस्थित जीवन पर खीजकर उनसे पूछ ही तो बैठा—'क्यों जनाब, आखिर आपने अभी तक अपनी शादी क्यों नहीं की ?' पहिले तो व्यंग्यसे मुसकराकर वे बोले—'आपको मेरी बीबीसे मतलब ?' फिर बताया— बात यह है कि एक बार मैं ट्रेनसे सफ़र कर रहा था । इसी बीच मेरे पाँवसे एक युवतीका पाँव कुचल गया । इस पर उसने ऐसी-ऐसी बुरी भली कहीं कि क्या बताऊँ । लेकिन जैसे ही उसने घूमकर मेरी शकल देखी, तो बोली—'ओह ! माफ कीजिएगा, मैं समझी मेरे पतिदेव थे !' बस उसी दिनसे मैं पति बनते हुए घबराता हूँ ।

× × ×

यूँ बातों ही बातोंमें अधिक समय हो जानेसे, शेष और किसी दिन सुनानेका वचन देकर चुटकुलेवाला मुझसे विदा हो लिया ।



माफ़ कीजिए, मैं माँग कर नहीं पढ़ता

चाहे आप घरमें हों या सफ़रमें, आपने अख़बार खरीदा नहीं कि फ़ौरन सुननेको मिलेगा—'क्या मैं इसे ले सकता हूँ ?'

हो सकता है कि आप नियमसे अख़बार पढ़नेके आदी हों, हो सकता है कि आपने कोई ज़रूरी ख़बर जाननेके लिए अख़बार खरीदा हो, लेकिन औरोंको इसकी परवाह नहीं, वे तो तब तक चैन नहीं लेंगे जब तक आपका अख़बार उनके हाथ में न पहुँच जाए। और उस पर भी मज़ा यह कि वे उसे पढ़कर बजाय आपको लौटानेके उसे दूसरी तरफ़ इस तरह बढ़ा देंगे मानो अख़बार आपका नहीं, उन्हींका हो, और वे उसे बड़ी शानसे दान करने जा रहे हों ! यदि आप ट्रेनके सफ़रमें हों तो देखते-देखते आपका पत्र सारे डिब्बेमें चक्कर लगाने लगेगा। उसके पृष्ठ जुदा-जुदा बेंचों पर जुदा-जुदा हिस्सोंमें बिखर जायेंगे और यदि आपके सौभाग्यसे वह आपके पास लौटा भी, तो इस तरह जर्जरित अवस्थामें कि आपके पास सिवाय उसे खिड़कीसे बाहर फेंकनेके और कोई चारा नहीं रह जायेगा।

मैंने लोगोंको दूसरेसे माँगे हुए अख़बार पर खाना खाते, और कभी-कभी उससे अपनी बर्थका कचरा साफ करते हुए देखा है।

यदि आप ज़रा साहसी हुए और आपने अपने खरीदे हुए अख़बारको स्वयं ही पढना शुरू कर दिया तो वे बिना इस बातकी परवाह किये कि आपके पहिले पृष्ठका शेषांश तीसरे पर आता है, वे आपके हाथसे तीसरा पृष्ठ छीनकर उसे ही पढना शुरू कर देंगे। अब या तो आप अपने ही अख़बारकी उनसे भीख माँगें, या उसे पढ़नेसे महरूम रह जाएँ।

यदि अख़बार दो ही पृष्ठोंका हुआ तो वे स्वयम् आपके सामने बैठकर अख़बारको दोनों हाथोंसे पकड़कर आपके हाथोंमें ही पीछेकी तरफसे उसे इस तरह पढ़ना शुरू कर देंगे कि सामनेवालेके लिए यह समझना मुश्किल हो जाये कि अख़बार आपका है या जिनकी तरफ मुख पृष्ठ है उनका !

यदि आप अपना पत्र बर्थ पर रखकर पानी पीने या प्लेटफ़ार्म पर यों ही घूमने चले जाएँ तो यह हो ही नहीं सकता कि आपके लौटने पर वह आपको अपनी जगह पर मिल जाए।

यार लोगोंने तो उसे कुछ इस तरहकी सार्वजनिक चीज़ बना डाला है, कि उसमें खरीददारसे पूछनेकी आवश्यकता भी नहीं महसूस की जाती।

सुना है विदेशोंमें अख़बार सड़कों पर जमाकर रख दिये जाते हैं, वहाँ कोई नहीं बैठता। लोग आते हैं, पेटीमें पैसा डालते हैं, और इस तरह अख़बारकी दुकान बिना मालिकके भी चलती रहती है। यदि कोई हमारे देशमें इस तरहका प्रयोग करे, तो मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उसके अख़बार तो सब बँट जाएँगे, लेकिन पैसा एक भी पेटीमें नहीं आएगा।

अभी-अभी नागपुरमें एक ऐसा ही प्रयोग किया गया था, सो सारे अखबारोंके मूल्य-स्वरूप एक पेटीसे एक आना और दूसरी पेटीसे सात पैसे निकले थे।

अनेकों लोग तो बेचारे बुक-स्टालवालेके यहाँ ही खड़े-खड़े समूचा अख़बार पढ़ जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि अत्यन्त सभ्य तरीक़ेसे वे उसका कैसा भयंकर शोषण कर रहे हैं।

यदि हम इस आदतको बदलना चाहते हैं तो हमें समाजमें एक ऐसे वातावरणका निर्माण करना चाहिये जिसमें हम साहसपूर्वक यह कह सकें कि 'माफ कीजिए, मैं माँगकर नहीं पढ़ता।'

हाँ, इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि हमारे पत्र-सम्पादकोंको भी मुफ़्त माँगकर छापनेकी आदतको तिलाञ्जलि देनी होगी।

यदि हम मुफ़्तखोरीकी जगह श्रमको प्रतिष्ठा देना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनमें सर्वत्र श्रमनिष्ठाका विकास करना होगा।

ख़याल रखिए, यदि हम ख़रीदकर अखबार पढ़ते हैं, तो उससे हम अपनी पसन्दका अख़बार खरीदते हैं, उससे हमारी रुचि परिष्कृत होती है, हमारा मार्ग प्रशस्त बनता है। हम मुफ़्तका गलत-शलत पढनेसे बच जाते हैं। साथ ही, उससे स्वस्थ विचारप्रद पत्रोंको प्रोत्साहन मिलता है। और इस प्रकार समाजमेंसे मुफ़्तखोरीको आदतका अन्त होकर श्रमनिष्ठ जीवनका विकास होता चलता है।

[२]

मेरे एक मित्र हैं। हजारोंका लेन-देन है। कोई ऐसा धन्धा नहीं जिसमें उनका दखल न हो। पढ़नेके इतने शौकीन कि दिन भरमें ५०० पृष्ठोंका उपन्यास पढ़ जाएँगे। अख़बारमें सम्पादकीयसे विज्ञापन तक बिना पढ़े नहीं छोड़ते। लेकिन मजा यह कि अख़बार या पुस्तकें कभी भी वह खरीद कर नहीं पढते। साथी मित्रोंके पास जो भी पुस्तकें आती हैं उन्हें ही वह माँगकर या कभी-कभी बिना माँगे उठाकर ले जाते हैं और यों उनका सदुपयोग कर लेते हैं। पढ़नेके मामलेमें उनका कोई स्तर नहीं है। यदि किसीने 'माया' मँगाई तो 'माया' पढ ली, और 'सर्वोदय' मँगाया तो 'सर्वोदय' पढ लिया। जब तक पढ़ेंगे, ऐसा लगेगा मानो उसमें डूब गये हों, लेकिन जहाँ ग्राहक आया कि फौरन पत्रको वहीं खुला फेंक तुरन्त धन्धेमें जुट जाएँगे और तब बेचारी पत्रिकाएँ या पुस्तकें अपने ऊपर कपड़ेके थानोंका मनों वजन सहकर रक्षाके लिए त्राहि-त्राहि पुकार उठेंगी। यदि उनका वश चले तो वे फिर कभी उनके दरवाजे जानेका साहस न करें। लेकिन वे हैं कि बिना उन्हें ले जाए उन्हें चैन नहीं, कारण, बिना पढ़े उनसे रहा नहीं जाता, और खरीदकर पढ़नेको वह 'मुनाफ़ेका धन्धा' नहीं समझते।

उन्होंने जब मेरा ऊपरवाला लेख देखा तो कहा—'यह तो अख़बार वालोंके स्वार्थकी बात है।'

मैंने कहा—'हे निस्वार्थताके अवतार ! यदि आपने मेरे लेखको ध्यानपूर्वक पढा हो तो उसमें मैंने मुख्यतः दो चीज़ोंका विरोध किया है—एक तो उस 'वृत्ति' का जो 'श्रम' की क़ीमत देना नहीं चाहती, और दूसरी ओर उसका 'अधिकार' की तरह उपयोग भी करना चाहती है। दूसरे, उन व्यक्तियोंका जो बिना पूछे अख़बारको उठा ले जाने, बिना माँगे उसे नहीं लौटाने, कोई पढ़ रहा हो तो उसे दूसरी ओरसे पढना शुरू कर देने, या उसके बीचके पृष्ठको छीन लेनेकी हद तक नागरिकताके साधारण नियमोंका उल्लंघन कर जाते हो।'

यहाँ लोकमान्य तिलककी वह घटना याद आये बिना नहीं रहती जब कि एक महाशयने उनसे पढते हुए अख़बारका एक पृष्ठ माँगा तब उन्होंने अपनी जेबसे निकालकर इकन्नी बढ़ाते हुए कहा था—'कृपया आप दूसरा ख़रीद लें, मैं इसे पढ़ रहा हूँ।'

मैंने सफ़रमें ऐसे लोग भी देखे हैं जो चाय, बिस्कुट और सिगरेट पर तो रुपया खर्च कर देते हैं, लेकिन चार पैसेका अख़बार माँगकर पढ़ना वे अपना अधिकार समझते हैं।

मैं पुस्तकें मुक्तहस्त पढनेको देनेमें संकोच नहीं करता, लेकिन जब मैंने देखा कि बजाय पढी जानेके वे सिरहाना लेकर सोनेके भी काम आने लगी हैं, और उनकी खाली जगहों पर हिसाब जुड़ने लगा है, तब मैं स्तब्ध रह गया। एक महाशयकी यह आदत है कि चाहें आप श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मासिक दें, वह पढेंगे, उस पर अपनी राय देंगे, लेकिन उसकी खाली जगहों पर अपनी दूकानका हिसाब जोड़े बिना भी नहीं रहेंगे। मेरी 'विश्व-वाणी' और 'नई-धारा' की फाइलोंको भी उन्होंने माफ नहीं किया। यही क्यों, एक बार एक कालेजके विद्यार्थी मेरी एक पुस्तक ले गये। उन्होंने समय पर लौटा भी दिया लेकिन जब खोलकर

देखा तो उस पर ऐसे गन्दे रिमार्क लिखे पाए कि आज भी उस पुस्तकको अपनी कहनेका साहस मुझमें नहीं है।

इस सम्बन्धमें काका गाडगिलने एक बड़े ही मनोरंजक अनुभवका ज़िक्र किया है। एक ज़मानेमें उन्हें कबाड़ेसे भी पुस्तकें खरीदनेका शौक़ था। एक बार उन्हें कबाड़ेकी दूकानपर एक बड़ा ही अमूल्य ग्रन्थ मिल गया। वह उसे ख़ुशी-ख़ुशी लेकर घर आए न लेकिन जब उन्होंने पुस्तकको खोलकर देखा तो उसपर अपना ही नाम लिखा पाया। बात यह थी कि एक बार एक मित्र उसे माँगकर ले गये थे और वह उसे कबाड़ेमें फेंक आए। इस प्रकार अपनी ही पुस्तक उन्हें दुबारा खरीदनी पड़ी।

इसके अलावा ऐसे व्यक्तियोंके उदाहरणोंकी भी कमी नहीं—जिन्होंने अपने सारे ख़र्चमें कमी करके पुस्तकोंपर ख़र्च किया हैं।

बात है राऊके सर्वोदय-सम्मेलन की। मैं 'सस्ता-साहित्य-मण्डल', की। शाखा की दूकानपर बैठा था। इतनेमें एक मोटर आकर उसके सामने रुकी। उसमेंसे एक अप-टु-डेट महाशय उतरे। उन्होंने पुस्तकोंको उलट-पलटकर देखा और अन्तमें एक सबसे सस्ती चन्द आनोंकी पुस्तक खरीदकर चलते बने। उन्होंने पुस्तकोंपर उतना पैसा भी ख़र्च नहीं किया जितना उन्होंने दूकान तक आनेमें पैट्रोल पर किया था।

कुछ देर बाद एक दूसरा व्यक्ति आया। उसके पाँवोंमें साधारण-सी चप्पल थी और वह घुटने तक खादीकी धोती और आधी बाँहकी कमीज पहिने था। उसने पुस्तकके बाह्य-रूप या मूल्य नहीं देखे वरन् लेखकोंके नाम पढ़े, रुपये निकाले और गाँधी-साहित्यका एक पूरा सेट खरीदकर ले गया। दूकानके व्यवस्थापक महोदयने मुझे बताया कि ऐसे ही लोगोंके बलपर आज गाँधी-साहित्य चल रहा है वरना इन विचारप्रद ग्रन्थोंको कौन पूछता।



फ़सलें बोलीं

उस दिन जब मैं खेतमें गया तो, छोटे बच्चेकी तरह मूँग मेरे पैरोंसे लिपट गया, तूअरने मुझे छातीसे लगा लिया और मस्तीसे झूमते हुए ज़ुवारने अपना हाथ हिला-हिलाकर मेरा स्वागत किया।

इसी बीच पैरोंके नीचे कुचलती-सी मूँगफली बोली—'ऊपर देखनेकी धुनमें हम ग़रीबोंको न भूल जाइएगा।' 'यद्यपि ऊपरी दिखावेके लिए हमारे पास कोई फल या फूल नहीं है, लेकिन जिन जड़ों से प्रत्येक वृक्ष अपने लिए 'जीवन-सत्व' खींचता है, अपनी उन्हीं जड़ोंमें हम आपके लिए फलोंकी सौग़ात लिये हुए हैं। अन्य वृक्ष तो सींचने पर ही फल देते हैं, लेकिन हम हैं कि हमें यदि आप उखाड़ भी फेंकें, तो मूँगफलीकी भेंट पायेंगे।'

इतनेमें पास ही खड़े मूँग और चौलाईने कहा—'यद्यपि वर्गमें हम भी इन्हींके आते हैं, लेकिन हमने जब आपके आनेकी बात सुनी, तो आपको झुकनेमें कष्ट नहीं हो, इसी लिए अपनी अँगुलियोंकी अँजुलीमें भर आपके लिए फसलकी सौगात ले आये हैं।' और मैं एक क्षण उन मूँगकी फलियोंसे युक्त नाज़ुक अँगुलियों पर मुग्ध रह गया!

लेकिन जाने क्यों, कपासको मेरा उसके पास इतनी देर खड़ा रहना बर्दाश्त नहीं हुआ और वह बार-बार सिर हिलाकर मुझे अपनी ओर आनेका इशारा करने लगा। लेकिन जब मैं उसके नज़दीक पहुँचा, तो वह मुझे अपने ही 'अहं' में झूमता हुआ-सा लगा। उसका रूप-रंग हाव-भाव, सब कुछ वैसे पैसे वालेकी तरह था जो दूरसे तो अच्छा लगता है, लेकिन पास जानेपर जिसमें न 'रस' होता है न 'गन्ध' और जो इतना रूखा होता है कि जैसे 'कपासका फूल'।

इतनेमें ज़ुवारसे नहीं रहा गया तो वह मेरा कन्धा झकझोरते हुए बोली—'क्या तुम भी उसके रूप पर रीझ गये? जानती हूँ उसके पास रुपयेकी चकाचौंध है, लेकिन वह अगर रुपया है, तो मैं तो-तुम्हारे घरकी 'लक्ष्मी' हूँ न! देखो, मैं कबसे अपने सिर पर फलोंका बोझ लिये तुम्हारी प्रतीक्षा किये हूँ, लेकिन तुम हो कि तुम्हें—हमारे पास तक आनेका अवकाश नहीं! 'और उसने खिलखिलाकर हँसते हुए अपने सिर पर रखे हुए समस्त भुट्टोंकी भेंट मेरे चरणोंमें रख दी। बोली—'देखो जी, हम उस 'छलिये' कपासकी तरह नहीं हैं जो अच्छे मौसमका साथी होता है, यहाँ तो एकबार जिसका पल्ला पकड़ा—सो पकड़ा।'

हमारी बातचीत सुनते ही दूरसे ही नमस्कार करते हुए गेहूँने कहा—'अरे, आप कब आये! और जब यहाँ तक आये ही हैं, तो हमसे मिले बिना कैसे जा सकते हैं?'

उसका घर थोड़ी दूर था। मैं जब उसके यहाँ पहुँचा, तो उसकी शालीनता देखकर दंग रह गया। मैंने देखा उसके यहाँ एक अजीब ठंडक थी और चारों ओर हरी दूबके गलीचे बिछे थे। अनेकों नौकर उसकी सार-संभाल कर रहे थे। कोई उसे खाद दे रहा था तो कोई उसे पानी पिला रहा था। मन्त्रीके सन्त्रीकी तरह एकाध आदमी उसके यहाँ पहरे पर भी खड़ा था। उसने अपने साथियोंका परिचय कराते हुए कहा—'ये हैं 'श्रीमती चना' और ये हैं मेरे साथी 'बटाना'।

मैंने उन्हें प्रणाम किया। लेकिन जाने क्यों, मेरा मन बार-बार उस ज़ुवारके चरणोंमें नत-मस्तक था, जो कष्टोंमें भी मुसकराती और ग़रीबीमें भी मनुष्यका संग निबाहती आई है!



फसलकी रंगीन-मिज़ाजी

जैसे चील अपने अण्डेको सेती है, वैसे ही बड़े-बड़े पंखों वाले बादल-रूपी पक्षीके द्वारा, धरतीके अण्डेको सेनेसे, उसमेंसे फसलके बच्चे फूट निकले हैं।

बच्चोंके फूट निकलनेसे अण्डेके छिलकोंकी तरह धरतीकी मिट्टी पौधोंके आसपास छितरा गई है।

रम्भाते हुए घर आने वाली गायकी तरह बादल गरज कर—चिंघाड़ते हुए घर आता और अपनेसे सहस्रों स्तनोंसे फसलको आकंठ दूध पिला जाता है।

जब वह खेतों पर छा जाता है तो ऐसा लगता है मानो दिशाओं रूपी चार पाँवों पर खड़ी कामधेनु हो।

रोज़-रोज़ दूध पीते बच्चे आख़िर एक दिन दूध-पीते बच्चे नहीं रह जाते और धरतीसे ही अपना जीवन-सत्त्व खींच, हरियाने और लहलहाने लगते हैं।

जब वे जवानी पर आते हैं तो उनकी रंगीन-मिज़ाजीके क्या कहने!

'कपास' अपने कालरमें सफेद फूल लगाकर, फूलोंसे वेणी गुंथाई 'मूंगफली' पर अपना रौब ग़ालिब करता है, और 'ज्वारी' किसी शाहंशाहकी तरह अपने सिर पर हिलते हुए पत्तोंकी चवर लिये नखसे शिख तक शृंगारसे सजी, अपनेको वरनेका आमन्त्रण देने वाली 'तूवर' को अपने नज़दीक आनेका इशारा करती है।

और यह सब देखकर, असमयमें ही बूढ़े लगने वाले तरुणोंकी तरह, दाढ़ी लेकर ही पैदा होने वाला 'मक्का' सुदूर एक कोनेमें खड़ा मुसकरा उठता है।



बादलकी हरक़त

एक साँझ चुपकेसे बादल आया, और जैसे कोई शयन-कक्षके दीपको बुझा दे, ऐसे चाँदको अपनी पीठकी ओटमें लेकर सहस्रों धाराओंसे धरतीको अपने प्रगाढ़ आलिंगन-पाशमें कस लिया।

धरतीका अंग-अंग कसमसा उठा, उसकी छाती पर लगे खेतोंके बन्द टूट गये। यौवनकी बाढ़से उसके मटमैले वस्त्र, अस्त-व्यस्त होकर छितरा गये। और सुबह होनेपर उसने देखा उसके शरीर पर प्रियतमके नाखूनोंके चिह्न अंकित हो उठे थे।

उसने अपनेको सम्भाला, और बेलोंसे कढ़े लहँगे पर अपने प्रियतम द्वारा बड़े स्नेहसे सौंपी गई हरे रंगकी चूनर पहिनी तथा फूलोंसे शृंगार कर नदियोंके दर्पणमें अपना मुँह निहारा।

बादल उसके रूप पर मुग्ध हो उठा, और उसने कौंधती हुई बिजलीकी तरह आँख मारकर दिनमें ही अपने घर लौट आनेकी सूचना दी।

लेकिन प्रकृति इतनी लज्जाशील थी कि उसने कभी अपने श्वसुर सूर्यके समक्ष अपने पतिसे भेंट नहीं की। वह जब कभी ऐसा करना चाहता, वह लजाकर सूर्यकी ओर इशारा करती और शरारती बादल तत्काल उसे अपनी ओटमें लेकर दोनोंकी मर्यादाका पालन करते हुए उसे अपने प्रगाढ़ आलिंगन-पाशमें कस लेता था।

यों प्रेमसे सराबोर हो फूलोंसे शृंगार करते-करते आखिर एक दिन वह फलवती हुई। उसका शरीर फलोंके भारसे झुक गया और उसकी गोदी फसलकी सौगातसे भर चुकी। अब वह अपने पतिके समक्ष जानेसे लजाने लगी।

उधर बादलका मन भी अब धरतीकी ओर लग नहीं पाता था। उसके भरे घट अब रीत चले थे और उसका खाली मन हवामें इधर-उधर उड़ता-फिरता था।

उसने देखा प्रकृति भी अब बजाय उससे आँखें लड़ानेके अपनी गोदीकी फसलकी सार-संभाल किये रहनेमें ही अपना अधिकांश समय दिये रहती है, और उसके हफ्तों घर न लौटने पर भी जब कोई उसकी खोज-ख़बर लेनेवाला नहीं रहा, तब लाचार एक दिन खीजकर वह पुनः समुद्रकी कमाई पर चल दिया।



सावनमें मैके क्यों ?

एक दिन आकाशका लाड़ला बेटा बादल, अपने आवारा साथी वायुको गलबांही दे, धरतीसे ज़रा नजदीक होकर मंड़रा रहा था।

इतनेमें उसकी दृष्टि, इठलाती और बलखाती हुई, लेटी, धरतीकी बेटी नदी पर पड़ी।

उसके रूपमें अपनी परछाइँ देखकर वह उस पर मुग्ध हो गया। लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी वह अपनी माँसे चिपटी बेटीको अपने संग भगा ले जानेमें असमर्थ रहा।

लाचार, उसने खीजकर आकाशके तेजस्वी देवता सूरजसे मदद चाही।

आकाशके एकछत्र सम्राट् सूरजको भी धरतीकी यह हरक़त पसन्द न आई। और उसने अपनी प्रचण्ड किरणोंसे नदीको सोखकर बादलके हवाले कर दिया।

एक क्षण बादल अपनी विजय पर फूला न समाया, लेकिन दूसरे ही क्षण उसने देखा सपत्नीक हो जानेसे वह आकाशमें ऊँचे-से-ऊँचे उड़नेसे लाचार हो उठा था। और न जाने क्यों धरतीका आकर्षण बार बार उसे अपनी ओर खींच रहा था।

तब लाचार उसने हारकर चौमासे अपनी पत्नीको मैके भेजनेकी शर्त पर धरतीसे सन्धि कर ली।

तबसे आजतक प्रत्येक मनुष्य, सावनमें अपनी पत्नीको मैके भेजने की रस्म निबाहता आया है।



सृष्टिका रोमांस !

सन्ध्याके उतरते झुटपुटेमें, सुदूर क्षितिज पर, सूरजके अल्हड़ बेटे दिन ने अपने पिताको जरा अस्ताचलकी ओटमें लेकर जब अस्त-व्यस्त और बेखबर-सी होकर उतरती रातको चूम लिया, तो उसका चेहरा रक्त-वर्ण सन्ध्याकी तरह लाल हो उठा, और उसने लजाकर गहरे अन्धकारके घूँघटमें अपने आपको छिपा लिया।

रातके पिता चाँदको जब सूरजके बेटेकी इस उद्दण्डताका पता चला, तो वह असंख्य ताराओंकी फौज लेकर दिनकी खोजमें चल दिया।

लगातार चलते रहनेके बाद, जब उसकी उम्र ढलनेको आई, तो उसने देखा, उसकी पकड़से दूर, बहुत दूर, अपने अस्त-व्यस्त कपड़ोंको सँभालते हुए रात्रि, प्रभातकी बाहोंसे अपने आपको छुड़ाकर, भागी जा रही थी और सूरजका वही उद्दण्ड बेटा, सुदूर क्षितिज पर उनींदी आँखों, अँगडाई लेते हुए, मुसकराते खड़ा था।

लाचार चाँदने अपनी हार स्वीकार कर ली।

कहते हैं उसके बाद, लड़कीका पिता होनेके नाते चाँदको तो अनेकों बार सूरजके घर आते-जाते देखा, लेकिन चाँदकी तनिक-सी हरकतसे रूठकर, सूरज फिर कभी चाँदके घर नहीं गया।

पता नहीं बादमें समधियोंकी अनबनका क्या हुआ, लेकिन रात और दिनके मिलनके परिणाम-स्वरूप, आज भी नित्य धरती पर आदमी के बच्चोंकी कुलबुलाहट बढती जा रही है !



आलिंगन-मग्ना

जब मैं वहाँसे गुज़रा, वह नदीके किनारे उसकी कमरमें हाथ डाले, प्रगाढ़ आलिंगन करती-सी खड़ी थी।

क़दमें वह उसके समकक्ष-सी लग रही थी, और रूप तो मानो उसके अंग-अंगसे झर रहा था।

अंग-सौष्ठवकी दृष्टिसे, एकका शरीर जितना स्वस्थ और गठा हुआ था, दूसरी उतनी ही लजीली और कमसिन थी।

वे दोनों इस क़दर अपने आपमें खोये थे कि उन्हें आने-जानेवालोंका कुछ भान ही नहीं था।

मैंने बहुत चाहा कि इस क़दर खुलेमें किसीको आलिंगन-मग्ना देखना सभ्यताके विरुद्ध है, लेकिन आँखें थीं कि उस ओर बरबस खिंची जाती थीं।

जी हाँ, जब मैं वहाँसे गुज़रा, नदीके किनारे लता, वृक्षसे कुछ इस क़दर चिपटी थी कि उसे आने-जानेवालोंकी कोई परवाह ही नहीं थी!



जब चिलचिलाती धूपकी साड़ी पहनकर गरमी आई !

जब चिलचिलाती धूपकी साड़ी पहनकर गरमी आई, तो हर किसीका मन उसकी अंगुली पकड़कर घूमने जानेके लिए ललक उठा ।

रातें अब इतनी बड़ी न रहीं जो दिनकी बाहोंमें न समापायें, और दिन भी अब इतने छोटे न रहे जो रातको अपने अंकमें न समेट सकें ।

दिन और रातका जोड़ा साथ-साथ चल रहा था ।

सुबह सात बजेका चला सूरज, बारह बजे मध्याह्नमें थमता, और शाम ठीक सात बजे अपने घर पहुँच पाता । दरवाजे पर लजाते हुए सन्ध्या उसका स्वागत करती और चाँद एवम् सितारोंसे जड़े रात्रिके रंगमहलमें सारी रात कटती, कि उधर बड़ी सुबह आकर प्रभात द्वार खटखटाता, और यूँ वह अपनी उनींदी लाल आँखें मलता पुनः अपनी यात्रा पर चल देता था ।

वह वर्षा अब बीत चुकी जिसमें भीग जानेके डरसे स्त्री-पुरुषोंके जोड़े अपने घरों-घिरोंदोंमें घिरे रहते और बादलोंकी गड़गड़ाहट जिन्हें और भी नज़दीक खींच लाती थी ।

और वह सर्दी भी अब नहीं रही जिसके लग जानेके डरसे अनेकों स्त्री-पुरुष रजाइयोंमें लिपटे पड़े रहते और हवाका एकसर्द झोंका जिन्हें सरसे पाँव तक ओढ़ लेनेको बाध्य कर देता था ।

अजी, यह तो उस गरमीका सुहावना मौसम है जिसने सबको अपने शयन-कक्षसे खींच, सड़कों, मैदानों पर ला दिया ।

वृक्षअपने पत्तोंको छोड़, अंगड़ाई लेते-से खड़े हैं। पक्षी, बजाय अपने घोसलोंमें जानेके, टहनियों पर ही रात काट देनेमें सुख अनुभव करते, नदियाँ अपनी सारी लज्जा त्याग, दोनों कूल-किनारोंसे नीचे होकर बहने लगीं, और चाँद अपने चेहरे परसे बादलोंका घूँघट हटा, बेशरम-सा एकटक इन सबको निहार रहा है।

ऐसी अवस्थामें मनुष्यकी कौन कहे, जब गरमी भी चिलचिलाती धूपकी साड़ी पहनकर सामने आई, तो हर किसीका मन उसकी अंगुली पकड़कर घूमने जानेके लिए ललक उठा!

महुआ और पलाश !

यह 'गेहूँ और गुलाब नहीं, "महुआ और पलाश" है।

जिस तरह गेहूँ और गुलाब अपने ऊँचे खानदान और सुकुमारिताके लिए प्रसिद्ध रहे हैं, उसी तरह महुआ और पलाश अपनी ग़रीबी और मस्तीके लिए मशहूर रहे हैं।

कोई ज़माना होगा जब गेहूँ और गुलाब सबको सहज प्राप्य रहे हों। लेकिन आज तो वह अनेकोंके लिए सुदूर कल्पनाका विषय बन चुके हैं। जी हाँ, इस देशमें ऐसे आदमी हैं जिन्हें गेहूँ नसीब नहीं, और गुलाब जिनके नज़दीक जानेसे कतराता है। सम्भव है बेचारे आज भी सोचते हों कि कोई जमाना आयेगा जब उनके अपने भी खेत होंगे और निजके बगीचोंमें गुलाब खिलेंगे। लेकिन सोचते-सोचते गेहूँका भाव बढ़ता जाता है—बढ़ता जाता है, और वह उनके ख़रीदनेकी सामर्थ्यसे परे हो जाता है। उधर उनके सोचे हुए गुलाबके फूलको लगानेके लिए भी उनके कपड़ोंमें कहीं साबित जगह नहीं मिल पाती। फूल गिर जाता है, गेहूँ बिखर जाते हैं, कि तभी नज़दीक खड़े हुए महुएकी आँखोंसे आँसुओंकी तरह टप-टपकर कुछ फल टपक पड़ते हैं।

इसपर पास ही खड़ा पलाश पूछता है—'क्यों भाई, आज असमय ही तुम्हारी आँखोंसे आँसू क्यों टपक पड़े?' सुनते ही रोम-रोमसे काँपकर महुआ कहता है—'क्या तुम नहीं जानते आज इन्सान भूखा है?'

कि इसी बीच वह अपने पाँवों तले कुछ गरमी और कुछ सरसराहट-सी महसूस करता है।

वह देखती है उसकी सहानुभूतिसे प्रेरित हो कुछ इन्सान, सभ्यों की नगरी छोड़, सुनसान डगरसे, अन्धेरी रातमें, अपना रास्ता टटोलते, उसके तले आ इकट्ठे हुए हैं।

कुछ आगी जलती है, कुछ गरमी बढ़ती है, और इन्सानके इन्सान के नजदीक घिर आनेसे उनमें परस्पर सहानुभूति जगती है और उससे पसीज कर मानो महुएका अंग-अंग खिल उठता है और उसके समूचे फल इन्सानके चरणों पर बरस पड़ते हैं।

उधर किरण फूटती है और इधर स्त्री-पुरुषोंके दलके दल उन्हें अपनी टोकनियोंमें बीनते हुए हँसते-गाते अपने-अपने घरोंको-लौट जाते हैं।

समय बढता जाता है कि एक दिन पलाश फूलोंसे अपना श्रृङ्गार कर उठता है। उसका सारा शरीर अंगारकी तरह सुर्ख़ लाल फूलोंसे सज उठता है।

अपने साथीकी इस रंगीनीको देखकर महुआ पूछता है—'क्यों भाई यह असमयका श्रृंगार कैसे ?'

पलाश मुसकराते हुए कहता है—'क्या तुम्हें नहीं मालूम 'होली' आ गई।'

और महुआ कान लगाकर सुनता है, उसे दूर गाँवोंसे ढफकी आवाज़के साथ इन्सानके गानेका स्वर सुनाई देता है।

पलाश गुनगुनाता है—'आज धरतीपर रंग भी मँहगा हो गया, इन्सानको रंग चाहिए और मैं उसे अपनी मस्तीसे रँगूगा।' क्रमशः गीतके स्वर नज़दीक घिरते आते हैं और इन्सान पलाशके फूलसे एक नवीन रंगकी सृष्टि करते हुए केसरिया रंगसे रँग जाता है।

उधर चूल्हेपर महुआ चढ़ता है और उसकी मस्त भीनी ख़ुशबूके साथ ढोलके बोल गूँज उठते हैं—'मस्त महीना फागुनका हो, जी, जी हो जी। जी जी...............